TEXT DARK AND LIGHT

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182627
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—901—29-3-71—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H83 V31M Accession No H.1114

Author वर्मा, वृन्दावनलाल

Title मुसाहिबजू 1951

This book should be returned on or before the date last marked below

मुसाहिबजू

(ऐतिहासिक उपन्यास)

वृन्दावनलाल वर्मा, एडवोकेट

(लेखक—झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, कचनार, मृगनयनी, पूर्व की ओर,
प्रेम की भेंट, विराटा की पद्मिनी, अचल मेरा कोई,
लगन, गढ़ कुंडार, हंस-मयूर आदि)

दूसरा संस्करण

मयूर-प्रकाशन
झांसी

मूल्य १॥)

प्रकाशक—
सत्यदेव वर्मा बी. ए., एल-एल. बी.,
मयूर-प्रकाशन, झाँसी।

द्वितीयबार १९५१

अनुवाद और चित्रपट-निर्माण आदि के सर्वाधिकार
प्रकाशक के अधीन हैं।

मूल्य १॥)

Checked 1969

मुद्रक—
द्वारिकाप्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश'
स्वाधीन प्रेस, झांसी।

परिचय

छोटू नाई दतिया का रहने वाला था। जब मुझे मिला लगभग ८० वर्ष का था। उसने जीवन भर सिपाहगरी की थी। दतिया मे बकाजू कोतवाल के सिपाहियों मे नौकर रहा था। दतिया मे अनेक पुरातन प्रथाओं के विश्वास के साथ इसकी सिपाहगरी खत्म हो गई इस उपन्यास की घटना उसी की बतलाई हुई है। इस उपन्यास के दो नाम मुसाहिब दलीपसिंह और रामसिंह धधेरा सच्चे है, शेष कल्पित है। उपन्यास की सब प्रमुख-घटनाएं वास्तविक है। कोतवाल ने जिस प्रकार मसाहिबज् से बन्दूक लेली थी वह घटना भी सही है। हमारा वर्तमान समय सवासौ वर्ष पहले की अवस्था का प्राकृतिक सिलसिला है। उस समय सामन्तयुग की समाप्ति प्रारम्भ हो गई थी, अब उस समाप्तिका अवशिष्ट मात्र है। उस समय उसमे कुछ सौष्ठव था ..... अब ?

वृन्दावनलाल वर्मा

मुसाहिबजू

— १ —

चिड़ियाँ चुप थीं। झींगुर झंकार रहे थे। तड़का नहीं हुआ था। सायँ-सायँ चलने के बाद हवा मन्द पड गई थी और उसमें कुछ ठंडक भी आ गई थी। मनुष्यों का एक झुण्ड सुलगते हुये बोड़ो वाली बन्दूके लिये उस टीलेदार बीहड़ वन मे चुपचाप चला जा रहा था। कभी-कभी ये लोग एकाएक ठहरकर आहट ले लेते और फिर सपाटे के साथ चल देते थे। गिनती के २०--२५ आदमी होंगे।

सघन वृक्षो से ढँकी हुई एक छोटी-सी पहाड़ी पर चढ़ने के उपरान्त ये लोग अलग-अलग ऊँची-नीची टोरो पर छिपकर जा बैठे। एक टोर पर दो मनुष्य एक साथ थे। एक के पास बन्दूक थी और दूसरे के पास म्यान मे बन्द तलवार।

धीरे-धीरे भोर हुआ। पूर्व दिशा के प्रति क्षण बदलने वाले रङ्गों की ओर इन लोगो का ध्यान न था। इनकी गडी आंखे वृक्षों के एक झुरमुट के तले प्रभाप्रच्छन्न अन्धकार मे कुछ टटोल

रही थी। यह स्थान उस टोर के नीचे निकट ही था, जहां ये दो मनुष्य जा बैठे थे। आधी घड़ी पश्चात् दो आकार उस अन्धकार की ओर रेंगते हुये दिखाई पडे। उन दो मनुष्यो मे से एक ने बिलकुल दबे हुये स्वर मे कहा—'काकाजू, तेदुओ की जोड़ी है।'

दूसरे ने भी देख लिया था। संकेत मे उत्तर दिया। तेदुओ को सन्देह हो गया। वे वही दब कर बारीकी के साथ टोह लेने लगे। रह-रहकर सिमटे। इन दोनो मनुष्यो ने सांस साधी।

इतने मे और प्रकाश हुआ। झुरमुट के तले का अन्धेरा और खण्डित हुआ। तेदुओ के आकार स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगे। उनकी चुल भी दिखलाई पड़ी। एक अदृश्य हो गया।

जिस मनुष्य को कुछ देर पहले 'काकाजू' शब्द से सम्बोधन किया गया था, उसने रक्षक को तोड़ से छुला दिया। रक्षक फुर्र-फुर्र हुई और फिर ज़ोर का धड़ाका हुआ। उस धड़ाके के साथ ही एक चीत्कारमय गर्जन सुनाई पड़ा परन्तु उस क्षण बारूद के धुये के कारण कुछ स्पष्ट न दिखलाई पड़ सका। उसी समय बन्दूक चलाने वाले अपने साथी से दूसरे ने ज़रा जोर से प्रफुल्ल स्वर मे कहा—'काकाजू, तेदुआ अवश्य मारा गया।' वाक्य समाप्त ही हो पाया था कि लोहू-लुहान तेदुआ छलांग भर कर काकाजू-सम्बोधित व्यक्ति की छाती पर आ चढ़ा। छिपाव के स्थानो पर इधर-उधर जो लोग बैठे हुये थे, उनमे से 'अरे' निकला और कोई-कोई अपनी ही घबराहट के कारण हथियार समेत नीचे की ओर लुढ़क गये!

तेदुये के पिछले पंजे चट्टान पर थे। एक पञ्जा बन्दूक चलाने वाले व्यक्ति के कन्धे पर पहुँच गया था और दूसरा हवा मे तुला हुआ-सा था। उस पंजे के बड़े-बड़े नाखून निकले हुये थे। सिर पर बंधे हुये साफे मे वे नाखून धँस गये। साफा हिला और खिसका। तेंदुआ अपने प्रबल आक्रमण के धक्के को न सँभाल

सका। उसी चट्टान पर जरा फिसल कर तिरछा हुआ, सँभला और दूसरे आक्रमण के लिये दुगुने वेग के साथ तैयार हुआ।

तुरन्त दूसरे व्यक्ति ने फुर्ती से तलवार निकाल कर जोर का हाथ तेंदुये की गर्दन और छाती के बीच मे भर दिया। वार कसा हुआ था, परन्तु तुरन्त घात का काम न दे सका। तेंदुये का पिछला धड़ चट्टान के नीचे की ओर फिसल कर रुक गया और सिर तलवार चलाने वाले शिकारी की जाघ पर जा अटका। साथ ही पैने दात जांघ मे जा घुसे।

'वाह पूरन ! वाह !'—बन्दूक चलाने वाले ने कहा—'कैसा बढ़िया हाथ किया है।'

पूरन ने इस प्रशंसा की ओर ध्यान न देकर आहत तेंदुये को अपनी जाघ पर से धकेल कर नीचे गिरा देने का प्रयत्न किया। मास मे दात अँटे हुये थे। अलग न कर पाया। पीडा हुई। तेंदुये के मुँह का लोहू पूरन की जाघ के रक्त के साथ मिश्रित हो कर बहने लगा। पूरन जरा घबराया, कराहा। पूरन का साथी उसकी पीड़ा का ठीक-ठीक कारण न समझ पाया और बगल मे पड़ी हुई बन्दूक को फिर से भरने के लिये जल्दी मे उठाया कि पूरन कष्टपूर्ण स्वर मे बोला—'काकाजू, इसने मरते-मरते मेरी जाँघ चबा डाली है।'

बन्दूक अलग रखकर वह व्यक्ति तेंदुये के दातो को पूरन की जाघ से छुड़ाने का उपाय करने लगा। बलिष्ठ होते हुये भी वह व्यक्ति अपनी पूरी शक्ति का उपयोग न कर सका। चिल्लाकर बोला—'क्या सब मर गये ? चलो, इधर।'

सबसे पहले एक बुड्ढा आया। हिम-सदृश श्वेत दाढ़ी थी। उसके दोनों सिरे कानो पर लिपटे हुये थे। लम्बो, छरहरी देह। बन्दूक हाथ में और तलवार बगल मे। यह पूरन का दादा था।

'राजा, आप ठहरो', बुड्ढा बोला—'मांस मे दाँत धँस गये है, मैं निकालता हूँ।'

बुड्ढे ने दोनो पैर पूरन की जाँघ मे अड़ाकर हाथो के पूरे बल से तेदुये के दाँत जाँघ से छुड़ा लिये। जाँघ का बहुत-सा भाग बँधी हुई दाढ़ो मे बिधा चला आया।

'रमू कक्का, आज मेरे प्राण पूरन ने बचाये है। मै सोचता हूं कि क्या देकर मै इसके प्राण बचाऊँ।'

'चिन्ता न की जावे, राजा', बुड्ढे रमू ने काँपते हुए स्वर मे कहा—'अपने साथ मरहम-पट्टी का सामान है।'

थोड़े क्षण उपरान्त और शिकारी भी आ गये। कुछ लोग तेदुये के मारे जाने पर बधाई देने लगे, कुछ जरा दूरी से पूरन के घाव और मृत तेदुये के सिर को देखने लगे। उन लोगो के इस भाव मे उदासीनता का आभास पाकर पूरन के बन्दूक चलाने वाले उस साथीने आँख तरेरी और करारे स्वर मे कहा—'तुरन्त मरहम-पट्टी करो।'

रमू बोला—'आप कोई न छुओ। मुझको मरहम और पट्टी दे दो। मैं अभी बांधे देता हूं।'

'ठहरो। मैं इस काम को अच्छा जानता हूं।'—काकाजू ने कहा।

*

— २ —

तेदुये पर बन्दूक चलाने वाले और मरहम-पट्टी का दृढ़ प्रस्ताव करने वाले दतियाराज्यान्तर्गत केरुआ के जागीरदार, जो ग्वालियर राज्य मे है, मुसाहिब दलीपसिह थे और रमू तथा पूरन जाति के मेहतर और मुसाहिब के सैनिक थे।

अठारहवी शताब्दी का अन्त हो गया था। भारतवर्ष मे दूरवर्ती पश्चिम से आई हुई एक नई जाति द्वारा नई राजनीतिक संस्था स्थापित होती चली आरही थी। बुन्देलखण्ड के रजवाड़ो के ऊपर सन्धियो के बन्धन पड़ चुके थे। नई सस्था की नई प्रणाली से बुन्देलखण्ड, अन्य प्रान्तो की तरह, सम्मोहित और संप्रभावित हो चुका था, परन्तु उसकी जकड़ मे इतनी कठोरता नही आई थी कि परम्पराये और स्थानिक रीतियाँ स्मारको के उत्सव-मात्र रह जायँ और जीने मरने की स्वाधीनता का उच्छ्वास निरोध के दबोचने वाले संयम मे कस जाय।

दतिया की परम्परागत अनियमित सेना मे उस समय कई सहस्र सैनिक थे। केरुआ के मुसाहिब दलीपसिह को बारह सौ योद्धा रखने का आदेश था। इसी प्रयोजनसे उनको बारह सहस्र रुपया वार्षिक आय की जागीर मे सेहुड़े के पास चिरूली इत्यादि आठ गाँव मिले हुये थे। इन बारह सौ सैनिको मे से लगभग आधे मुसाहिब के पास आते जाते बने रहते थे, बाकी छ सौ के विषय में विश्वास था कि अटक पड़ने पर कहीं से बुला लिये जायँगे। पूरे बारह सौ दशहरे के दरबार के दिन भी हाजिरी देने न आते थे; परन्तु भीड़-भाड़ को देखकर बारह सौ का अनुमान कल्पनाशक्ति द्वारा कर लिया जाता था। क़िले में रखी हुई तोपें, जिनको श्रीवास्तव ने ढाला था और जिन पर उसका

नाम खुदा या ढला हुआ था, कल्पना मे प्रत्येक टुकड़ी की चीज समझी जाती थी। थोड़े वर्षों पहले इन टुकड़ियो ने इन्ही तोपो का प्रयोग दिल्ली के मुगलो की हरावल मे दक्षिण और उत्तर मे किया था। परन्तु अब वे किसी सम्भव घटनासम्पात के केवल सभावनीय प्रयोग की साधन रह गई थी और अब इन तोपो का गर्व इन टुकडियो को अग्रेजी तोपो के सामने उतना नही रहा था। युद्ध की शैली परम्परा मे परिणित हो चुकी थी। नई सूझ बूझ के लिये कोई स्थान न रहा था। और यह परम्परा भी पारस्परिक बखेड़ो के समय जात-पाँत् का अभिमान प्रकट करने के लिये ही अधिक उपयोग मे आने लगी थी। युद्ध और योद्धा के नाम की लकीर पीटी जाने लगी थी। किसी सैनिक को थोड़ी सी भूमि और किसी को एक-एक दो-दो रुपये मासिक वेतन मिलता था। यह भी महीनो बकाया मे पड़ा रहता था और कभी कभी बकाया बिना दिये लिये ही माफ भी हो जाया करता था।

परन्तु मुसाहिब दलीपसिह का नियम था कि जब कभी जितने सैनिक उनके घर पर आ जाते, वे उनको भोजन कराते। भोजन के लिये दो-चार घण्टे का विलम्ब भले ही हो जाय; परन्तु कराया अवश्य जाता था।

इन्ही सैनिको मे से मुसाहिब का एक शिकारी दल भी था। यो तो उनकी सेना मे सभी जातियो और वर्गों के मनुष्य थे; परन्तु शिकारी दल मे मेहतर अधिक थे। दलीपसिह उदार थे, शिथिल थे, हठी थे, सहज विश्वासी और सहसाप्रवर्ती। छुआ-छूत के दम्भ को वे न मानते थे। इसीलिये उनके सैनिको तथा अनुयायियो मे छुआछूत का भेद भाव बहुत न था।

मुसाहिब दलीपसिह ने बिना किसी सङ्कोच के कहा—'नहीं तुम रहने दो। इस काम को मैं करूँगा।' और उन्होंने अपने बहुमूल्य साफ़े मे से एक टुकड़ा पट्टी के लिये फाड़ डाला। तब

और लोग जुट पड़े। थोड़े से पलो मे पट्टी बँध गई। पूरन की शूरता की सराहना करने के बाद शिकारी तेदुये भी भीम काया और उसके रङ्ग के सौन्दर्य की प्रशसा करने लगे। तब बुड्ढा रमू पूरन से बोला—'अच्छा बहुत अच्छा हाथ कसा बेटा! पर राजा के निमक से कभी उऋण होओगे या नही इसमे सन्देह है।'

'बब्बा', पूरन ने बिना कोई कष्ट प्रकट किये हुये कहा—'म्यान मे न पड़ी होती तलवार, तो तेदुये को मचान के पास आने के पहले ही वहाँ का वही कतर कर फेक देता।'

'क्या!' रमू चिल्लाकर बोला,—'मुसाहिबजू के साथ बैठा शिकार खेलने और तलवार को म्यान मे बन्द करके! तूने आज हमारे पुरखो की डुबोई होती।'

बेचारा पूरन सकपका गया।

दलीपसिह ने कहा—'इतनी सफाई के साथ कोई बन्दूक भी नही चला सकता था, जितनी सफाई के साथ पूरन ने तलवार चलाई।'

'परन्तु', सधे हुये गले से रमू बोला—'ऐसे शिकार मे इतनी असावधानी करने के कारण इसको दो लाते अवश्य लगनी चाहिये।'

पूरन मुस्कराने लगा और लोग फिर उसकी प्रशसा करने लगे। मुसाहिबजू ने अपने गले का गुञ्ज उतारा और पूरन को पहना दिया। पूरन ने निषेध भी किया, पर वे न माने। गुञ्ज खरे सोने का था और उसमे कुछ जवाहर भी थे।

रमू की आखो मे आँसू आ गये। बोला—'यह क्या किया राजा? इस तुच्छ सेवा के लिये इतना बड़ा पुरस्कार!'

'यह तो कुछ भी नहीं है', मुसाहिब ने उत्तर दिया, और पूरन को छाती से लगाकर बोले—'आज से यह मेरे बेटे के बराबर हुआ।'

'सो तो वह और हम सब आपके हैं ही।' रमू ने रोते रोते कहा—'परन्तु यह क्या किया! छाती से लगा लिया! क्या किया यह!'

उसी मण्डली मे रामसिह धधेरा नामक शिकारी भी था। यह कुम्हर्रा का निवासी था। मुसाहिब का दूर के नाते मे साला होता था। बोला—'तभी तो समय पड़ने पर 'पूरन इसी छाती पर गोली भी तो लेगा।'

रमू गला साफ कर बोला—'सो तो राजा, वैसे भी अपने स्वामी के लिये छाती पर गोला-गोली ओढ़ लेने का हमारा धर्म है।'

रामसिह ने कहा—'रमू कक्का, सिपाही को लात मारना धर्म मे नही है!'

— ३ —

वहीं जंगल में एक छोटा-सा गाँव था। गाँव तक कन्धों पर और वहाँ से दतिया खटिया पर पूरन को सावधानी के साथ ले आये। दतिया में दलीपसिंह का डेरा भरतगढ़ फाटक में लगा हुआ था। डेरे तक आते आते तीसरा पहर आने को आ गया। बड़ी धूप थी और तेज लू। उतरता जेठ होनेपर भी मेह की एक बूँद न पड़ी थी। सबके सब भूखे और प्यासे थे, परंतु मुसाहिब के डेरे पर इतने मनुष्यों के खिलाने लायक भोजन सामग्री न थी, और उनका प्रण था कि जब तक अपने संगियों में से एक भी भूखा रहेगा, तब तक स्वयं अन्न ग्रहण न करेंगे।

उनकी पत्नी चरखारी के राजा की बेटी थीं। वे भी उतनी ही उदार थीं। अटक पड़ने पर अनेकबार उन्होंने मुसाहिब को अपने बहुमूल्य आभूषण दे दिये थे। कई बार ऐसा करने के कारण उनके पास बहुत थोड़े आभूषण बचे थे। मुसाहिब के सैनिक भी इस बात को जानते थे और उनमें से कई तो कभी कभी इस बात की चिन्ता में पड़ जाया करते थे कि मुसाहिब-पत्नी के उपकारों का बदला कैसे चुकाया जाय। खाद्य सामग्री की कमी के कारण वे उस दिन फिर चिन्ता में पड़ी। उन्होंने सोचा, सन्ध्या तक कुछ न कुछ प्रबन्ध हो जायगा। इस समय शर्बत से काम चलाती हूं।'

रानी ने रसोइनों से शर्बत बनाने को कहा। खाँड़ की खोज हुई। भांड़े में केवल इतनी निकली, जितनी से मुसाहिब का और तीन-चार मनुष्यों का काम चल पाता। रसोइनों से खिसिया कर कहा—'कहां गई? कल तो बहुत रखी थी!'

एक रसोइन ने बिना बुरा माने हुये उत्तर दिया—'खर्च क्या कुछ कम है?'

'अच्छा, एक पान बना लाओ', मुसाहिब-पत्नी ने कहा, 'तब तक मै कुछ उपाय करती हूँ।'

रसोइन बीड़ा बनाने लगी। मुसाहिब-पत्नी, जो 'चरखारी वाली सरकार' कहलाती थी, आरसी मे अपना मुँह देखने लगी। मुँह उतरा हुआ था। उन्होंने तुरन्त मुस्कराने की चेष्टा की। मनमे कहा, 'ज़रा पानी मिला देने से काम चल जायगा।' वे इस बात को प्रस्ताव का रूप देने वाली ही थी कि फिर गम्भीर हो गईं। बोलीं—'बड़ी देर लगाई ज़रा-सा पान बनाने मे।'

'लाई तो।'—रसोइन ने व्यग्रता का कोई भी लक्षण न दिखलाते हुये कहा।

चरखारी वाली ने सोचा, बहुत पानी मिला देने से थोड़ीसी खाड़ का भी स्वाद फीका पड़ जायगा। रसोइन से कहा—'अच्छा, ठण्डा पानी घर मे है कि वह भी नही है?'

'जाड़ो से पका मटको मे हिम-सा ठण्डा पानी भरा है', सुपारी पर सरौता चलाते हुये रसोइन बोली—'ऐसा ठण्डा कि छूने से कँपकँपी लग जाय।'

तीक्ष्ण मुस्कराहट के साथ उन्होने सन्देहपूर्ण स्वर मे पूछा—'गुड़ तो कदाचित् होगा ही नही?'

'गुड़ के शर्बत से तो ठण्डा पानी ही अच्छा।' रसोइन ने विवेकपूर्ण दृष्टि के साथ उत्तर दिया।

अपने को निस्सहाय समझकर चरखारी वाली ने एक सांस ली और मन मे प्रश्न किया, 'न जाने क्यो इतनी कड़ी गर्मी मे शिकार खेलते है?' रसोइन से बोली, 'शिकार खेलना तो सरदारो का काम ही है, परन्तु ज़रा पानी पड़ जाय, तब बाहर जाया करे, तो अच्छा हो।'

रसोइन ने कोई जवाब नही दिया। पान देकर ज़रा हिचकिचाहट के साथ कहा—'कितने लोगो के लिये रसोई

होगी ? हम लोगो को अभी से तैयारी करनी पड़ेगी, तब कही रात गये खाना बन पायेगा।'

चरखारी वाली ने पान चबाते चबाते धीरे स्वर मे कहा—'मुसाहिबजू को शर्बत भिजवा दो और अन्य लोगो के लिये ठण्डा जल। समझी न !'

रसोइन ने पहले से ही समझ रखा था, परन्तु अपनी समस्या को हल न होते देखकर ज़रा खीझ कर स्वामिनी की आज्ञा का पालन करने चली गई। इस बीच चरखारी वाली भण्डार मे गई। वहा देखा, तो रसोई की सामग्री पूरी नही थी। कहीं रसोइनें घबराहट को न परख ले, इसीलिये वे तुरन्त भंडार मे से निकल आईं और ठण्डे पानी से हाथ-पैर धोने लगी।

थोड़ी देर मे उस रसोइनं ने आकर कहा—'भिजवा दिया।'

— ४ —

पूरन को मुसाहिबजू ने अपनी ड्योढ़ी के एक कोने मे लिटा दिया। पंखा झलने के लिये उन्होने लल्ली नामक अपने एक लोधी सैनिक को आज्ञा दी। वह पखा झलने लगा। नाई मुसाहिबजू के लिये हुक्का भरने को गया। इतने मे बाहर रमू आ गया। उसने झपटकर लल्ली के हाथ से पंखा छीन लिया। बोला—'यह क़ायदे के खिलाफ है।'

मुसाहिबजू के हठ करने पर भी रमू नहीं माना। इतने में नाई हुक्का लेकर आ गया। मुसाहिबजू रमू के सामने हुक्का नहीं पीते थे। वह उनके पिता का साथी था और उसको मुसाहिबजू 'रमू कक्का' कहकर पुकारते थे। नाई भी इस बात को जानता था इसलिये उसने हुक्का एक तरफ रख लिया। रमू ने देख लिया। पूरन के बिस्तरे पर पंखा रखकर रमू वहाँ से चल दिया। कहता गया—'राजा, मैं घर तक हो आऊँ।'

उसके चले जाने पर लल्ली ने फिर पखा झलना आरम्भ कर दिया। मुसाहिबजू हुक्का पीने लगे। एक नौकर शर्बत, पानी के घड़े, लोटे और कटोरे ले आया। मुसाहिबजू ने हुक्का अलग रख दिया। प्यासे थे, उत्सुक दृष्टि से जल-पात्रों की ओर देखने लगे। शर्बत एक छोटे से लोटे में था और पानी घड़े मे। जैसे ही पानी पिलाने वाले ने शर्बत का लोटा उनकी ओर बढ़ाया, वह बोले—'पहले पूरन को।'

पानी वाला शर्बत के लोटे को एक ओर रखकर ठण्डे पानी के घड़े और लोटे को पूरन की ओर ले गया। घड़ा तो उसने एक ऊँचे स्थान पर रख दिया। लोटे से पानी ढालकर प्यासे पूरन को पिलाया। उसी समय एक सैनिक शर्बत का लोटा और कटोरा मुसाहिबजू के पास ले गया। कटोरे से मुसाहिबजू शर्बत

का पूरा लोटा खाली कर गये। फिर हुक्का सामने रखकर पूरन से पूछा—'खूब मीठा है, पूरन ?'

'मीठा, काकाजू !'—पूरन ने जरा आश्चर्य के साथ कहा। फिर तुरन्त सहज स्वर मे बोला—'बहुत ठीक है, काकाजू !'

मुसाहिबजू हुक्का पीने लगे और दूसरे लोग पानी। लल्ली ने भी पिया। पानी पिलाने वाले से कुछ दिल्लगी मे कुछ रिसियाना सा, बोला—'हमे कोरा पानी ! कब को कमर निकाली है ?'

मुसाहिबजू का ध्यान आकृष्ट हुआ। पूरन ने अज्ञेय सकेत मे लल्ली से कहा—'तुम्हे न जाने क्या बान पड़ी है।'

'क्या है पूरन ?', मुसाहिबजू ने लापरवाही के साथ पूछा।

'कुछ नही।', पूरन ने विश्वास दिलाते हुए उत्तर दिया।

लल्ली ने मुँह फेर लिया। मुसाहिबजू को सन्देह हुआ। हुक्के की निगाली हाथ मे पकड़े हुये वह बोले—'क्यो जी, लल्ली को शर्बत नही दिया ?'

नौकर ने कोई उत्तर नही दिया। वह दूसरे लोगो को पानी पिलाने लगा।

'क्या बात है ?'—मुसाहिबजू ने जरा जोर के साथ प्रश्न किया।

एक सैनिक ने पानी पीते-पीते कहा—'शर्बत नही है, पानी है, दाउजू !'

'क्यो रे ?'—मुसाहिबजू ने उत्तेजित होकर पूछा।

'मै क्या करता ?'—नौकर ने मुँह फेर कर उत्तर दिया।

मुसाहिबजू ने हुक्का सामने से हटा दिया। मूँछ पर हाथ फेरकर कुछ सोचने लगे। एक क्षण बाद भीतर गये। खबर की गई। पत्नी से कहा—'किसी को शर्बत, किसी को पानी ! यह क्या ?'

'केवल आपके लिये शर्बत था, और सबके लिये पानी।'

'क्यों ? यह भेद क्यों किया गया ?'

'क्या किया जाता ?'

'मैं ही सब-कुछ हूं—ये लोग आपके कोई नहीं है ? मेरे सिपाही आपके कोई नहीं ?'

'आपके सब-कुछ होने से ही मेरे भी कुछ-न-कुछ है।'

पत्नी को उग्र होता हुआ देखकर मुसाहिबजू भी उत्तेजित हुये। बोले—किसी दिन पानी न होगा, तो क्या पिलावेगी आप ?'

'जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक तो कुयें नहीं सूखेंगे। मेरे पीछे जो-कुछ हो।'

मुसाहिबजू कुछ ठंडे पड़े। नरम स्वर में बोले—'क्या इतनी भी खांड़ न थी कि थोड़ी-थोड़ी सब के बाट में पड़ जाती ?'

चरखारी वाली की उग्रता में अन्तर नहीं आया। बोली—'थोड़ी वस्तु को बढ़ा देने का रसायन मुझको नहीं मालूम है।'

मुसाहिबजू और नरम पड़े। बोले—पहले तो कईबार मैंने इस रसायन के उदाहरण देखे हैं।'

'अब भी देखियेगा।'—जरा कम्पित स्वर में चरखारीवाली ने कहा।

गम्भीर होकर मुसाहिबजू ने पूछा—'क्या खांड़ मेरे ही लोटे में थी या और भी किसी को दी गई ?'

'केवल इतनी थी कि आपको दी जा सके।'—सरल उत्तर मिला।

मुसाहिबजू ने जरा कठोरता के साथ कहा—'यह बहुत बुरा हुआ। जो कुछ हो, सबके लिये एकसा होना चाहिये। मेरा जीवन मेरे सैनिकों से ही सार्थक है। मेरे लिये धिक्कार है, यदि मैं पेट भर खाऊँ और मेरे आदमी भूखे या अधपेटे रहें।'

'आज कदाचित् ऐसा ही होगा।'—चरखारी वाली ने भी निर्ममता के साथ उत्तर दिया।

'तब मैं भी आज भोजन नहीं करूँगा।' मुसाहिबजू ने कहा—'हम सब लोग भूखे ही रहेंगे।'

मीठे स्वर मे चरखारी वाली ने जवाब दिया—'आज तो यह नौबत न आवेगी।'

मुसाहिबजू ढल गये। उन्होंने उत्सुकता के साथ पूछा—'भोजन की काफी सामग्री है भण्डार मे?'

चरखारी वाली ने हँसकर कहा—'आपको हमारे भीतर की बातो से क्या प्रयोजन है? आज आपकी सेवा मे कितने सैनिक है?'

एक क्षण सोच कर मुसाहिबजू बोले—'ठीक ठीक नहीं मालूम। अभी समाचार भेजता हू परन्तु पूरन के लिये आज और आगे १०-१५ दिन तक विशेष भोजन का प्रबन्ध करना पड़ेगा। उसको बहुत चोट आई है।'

'मैंने सुन लिया है।' चरखारी वाली ने कहा—'उसने अपने निमक की बजाई है। उसकी सुश्रूषा बहुत अच्छी तरह होनी चाहिये।'

'अब की बार किसानो ने पूरा लगान नहीं दिया है, इसी-लिये बीच बीच मे अटक पड़ जाती है। क्या करे, कही कोई युद्ध भी नही होता है, जिससे सिपाहियो का कुछ दिनो काम चले।' मुसाहिबजू कहते चले गये—'उनकी संख्या कम भी नहीं की जा सकती है। अंग्रेजो के साथ सन्धि हो जाने पर भी सिंधिया की ओर से खुटका बना रहता है। किसी दिन अंग्रेजो और मराठो की फिर छिड़ जावे, तो हमारे हथियारो की भी जङ्ग छूटे।'

चरखारी वाली इसप्रकार का मन्तव्य अनेक बार सुन चुकी थी। बोली—'सैनिको की संख्या कम न की जावे। आप बारह सौ योद्धाओ के नायक है। उनमे कमी होने से आपके प्राचीन गौरव को बट्टा लगने का डर है।'

मुसाहिबजू ने एक ओर देखकर कहा—'यदि उस समय पूरन ने अपने प्राणो की होड़ न लगाई होती, तो तेंदुआ तो मेरी छाती पर आ ही गया था।'

'आप क्या तवा लगा कर नही गये थे ?'—चरखारी वाली ने दृष्टि गड़ा कर पूछा।

मुसाहिबजू ने उत्तर दिया—'शिकार मे तवा लगा कर कोई नहीं जाता।'

'पूरन की मरहम-पट्टी का तो अच्छा प्रबन्ध हो गया है ?' उन्होने दूसरा प्रश्न किया।

मुसाहिबजू ने उत्तर दिया—'वह तो हो गया है। अब उसके लिये विशेष भोजन का प्रबन्ध हो जाना चाहिये। कदाचित् उसको बिलकुल अच्छा हो जाने मे एक महीना लग जावे। तेंदुये के दाँत और नाखून मे विष होता है।'

'जानती हूँ'—चरखारी वाली बोली—'नाहर की अपेक्षा बहुत कम भयानक होता है। उसके भोजन का उचित प्रबन्ध हो जावेगा।'

मुसाहिबजू वर्तमान समस्या को इस तरह सुलझी देखकर सन्तोष के साथ ड्योढ़ी मे लौट आये। अपने साथियो से कह दिया कि बहुत शीघ्र रसोई तैयार हुई जाती है। घोड़ वाली बात की कसक जी से निकल गई। 'नाहर की अपेक्षा बहुत कम भयानक होता है' जरूर जरा देर तक याद रहा।

अकेली रह जाने पर चरखारी वाली की आँख मे छोटा सा आँसू आ गया। इसको पोछ डाला। सोचने लगी, 'शिकार मे तबा लगाकर नहीं जाते, तो युद्ध मे क्यों जाते है? आक्रमण और आत्म-रक्षा का तो अखण्ड सम्बन्ध है।' फिर भीतर जा कर एक सन्दूकची मे से अपनी रत्न-जटित स्वर्ण-पहुँचियाँ निकाली। मन मे कहा, 'बहुमूल्य है, इस समय धरोहर रखकर पाँच सौ रुपये माँगा लेने से कुछ दिनों काम चल जावेगा। तब तक उगाही का रुपया आ जावेगा।' प्रधान रसोइन को बुलाकर कहा—'कितने लोगों के लिए खाना बनेगा, इसका पता लगाओ।'

उसने उत्तर दिया—'पता लगा लिया है। बहुत है। भण्डारे मे।'

चरखारीवाली ने बात पूरी नहीं होने दी। कहा—'घबराओ मत, अन्नपूर्णा सहायता करेगी। लल्ली लोधी को बुलवा लो।'

रसोइन प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखने लगी। वह मुस्कराकर बोली—'ये पहुँचियाँ उसको देकर कुञ्ज के यहाँ भेज दो। पाँच सौ रुपये इसी समय ले आवे। रुपये आते ही तुरन्त भण्डार की कमी को पूरा करो और भोजन तैयार करो। मुसाहिबजू और उनके सैनिक थके-मादे है। पूरन को हलुआ और खीर दो—आज सभी को हलुआ और खीर दो। भूलना मत। मै पूरन को कुछ पारितोषक भी दिया चाहती हूँ।'

'वह उसको पहले ही मिल गया है।' रसोइन ने कहा—'राजा ने अपने निज के पहिनने का गुञ्ज पूरन को पहना दिया है।'

मुसाहिब-पत्नी बोली—'चलो, भरा बोझ हल्का हुआ।' दूसरी ओर मुँह फेर कर उन्होंने एक हल्की-सी आह खींची।

फिर उसी क्षण सम्मुख होकर रसोइन से कहा—'सेनापति के लिये उनके योद्धा ही सब कुछ होते हैं।'

'अब आप और कुछ पारितोषक न दीजियेगा।' रसोइन ने सम्मति दी—'ज़रा ज़रा-सी बात पर पुरस्कार लुटाने से पाने वालो का स्वभाव बिगड़ जाता है।'

मै पुरस्कार के सिद्धान्त को जानती हूं। तुम इन पहुँचियो को लल्ली द्वारा कुञ्जी के पास भेज दो। जल्दी जाओ।'

रसोइन पहुँची की जोडी लेकर चली गई। चरखारी वाली सोचने लगी, 'अपने पहनने का गुच्छ भी दे दिया! मैने लक्ष नही कर पाया, नही तो पूछती। परन्तु पूछकर क्या करती? रीता गला भला नही मालूम पड़ेगा। गुच्छ का प्रबन्ध भी शीघ्र ही होना चाहिये। पर इस समय कुछ नही कर सकती हूँ। क्या करूँ, बड़ी विपद है! अब गाँठ मे और कोई ऐसे आभूषण भी नही है। घर जाऊँ, तब कुछ ठीक पड़े।'

— ५ —

कुञ्जी सेठ पड़ौस मे ही रहता था। लल्ली पहले भी कई बार अटक-भीर के समय इसी तरह मुसाहिब-पत्नी के आभूषण कुञ्जी के यहाँ गिरवी रख चुका था। गिरवी रखने के बाद फिर आभूषण कभी नही छुड़ाये जा सके। ब्याज इतना बढ़ा कि कुछ भी न दिया जा सका। मुसाहिबजू को भी मालूम था। वे आशा करते थे कि किसी अदृष्ट अचानक साधन द्वारा कभी इतना धन हाथ आ जायगा कि सब आभूषण, कदाचित् एक ही दिन मे, छुड़ा लिये जायेंगे, अथवा किसी दिन किसी अदृष्ट आकस्मिक घटना द्वारा कम न किये जाने योग्य व्यय बिलकुल कम हो जायेंगे और जागीर की आय से ही सारा ऋण चुका दिया जायगा। इसीलिये वे ब्याज देने की चिन्ता मे अपने को बहुत कम खपाते थे। और जब तक पत्नी के आभूषण ठेल दिये चले जाते थे तब तक त्रास को मन मे बसाने की आवश्यकता ही क्या पड़ सकती थी ?

लल्ली कुञ्जी के घर गया। उस समय कुञ्जी घर पर नही था। उसकी लड़की थी। सुभद्रा नाम था। युवावस्था-प्राप्त विवाहित स्त्री थी। पतिगृह मे सुख न मिलने के कारण प्राय. बाप के पास रहती थी। ४-६ महीने मे विवश होकर जब उसको पति के घर जाना पड़ता था, तब दो-चार दिन रह कर फिर मायके चली आती थी। घर मे बाप के सिवा और कोई न था। वह पति के यहां से कछ महीने हुये लौटकर आई थी।

कुञ्जी को घर मे न देखकर लल्ली ने पूछा—'कक्का कहाँ गये है ? तुम कब आईं ?'

'कहीं बाहर गये हैं। आते ही होगे।'—सुभद्रा ने अपने काले बालो को जरा-सा ढाँकते हुये कहा, परन्तु अन्तिम प्रश्न का उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

लल्ली दरवाजे के पास बैठ गया। एक ओर देखते हुये बोला—'बहुत दुबली हो गई हो।'

'जी अच्छा नहीं रहा।'

'कोई दवा खाई ?'

'मैं दवा नहीं खाती।'

'कक्का से कहूंगा कि तुम्हारी अच्छी तरह चिकित्सा करा दें।'

'भगवान मेरी सुनले, तो पूरी चिकित्सा हो जावे'—सुभद्रा मुस्कराई। उसकी मुस्कराहट में मादकता थी।

लल्ली ने जोश के साथ कहा—'ऐसा मत कहो। सुनने में बुरा मालूम होता है।'

सुभद्रा घर के एक भीतरी कोठे में चली गई। लल्ली रह-रह कर उसी ओर देखने लगा। कभी-कभी सड़क की ओर भी देख लेता। थोड़ी देर के बाद सुभद्रा भीतर से ही बोली—'शायद कक्का को आने में विलम्ब हो जाय।'

लल्ली ने कहा—'तुम तो कहती थीं कि वह आते ही होंगे।'

'कहीं कोई काम लग गया, तो अटक भी तो सकते हैं।'—सुभद्रा भीतर से ही बोली।

'मैं तब तक नहीं टलने का, जब तक कक्का नहीं आते।' लल्लीने निश्चय प्रकट किया—'मुझको बड़ा आवश्यक काम है।'

सुभद्रा कोठरी से बाहर नहीं आई। वहीं से बातचीत करती रही—'क्या काम है ?'

'इतनी दूर से चिल्लाकर नहीं बतलाया जा सकता।'

'दूर क्या है ?'

'तुम!'

सुभद्रा ने इस पर कुछ नहीं कहा। लल्ली भी चुप बैठा रहा। जिस कोठरी में सुभद्रा चलीगई थी, वहाँ से कभी उसकी चूड़ियां और कभी पैजनों की आवाज आने लगी। लल्ली कभी सड़क पर

से आने-जाने वालो को देखता और कभी इस आवाज़ को सुनता। इस तरह कुछ समय हो गया।

जमुहाई लेकर लल्ली ने पूछा—'सुभद्रा क्या सो गईं? इसीलिये तो जी अच्छा नही रहता।'

कोठरी मे से सुभद्रा की हँसी का स्वर सुनाई पड़ा। उत्तर दिया—'तुम जाग रहे हो, मै सो रही हू।'

लल्ली—'ऐसा कब तक होता रहेगा?'

सुभद्रा—'जब तक जीवन है।'

लल्ली—'जीवन का कौन ठिकाना है?'

सुभद्रा—'हमारा भी तो कोई ठिकाना नही।'

लल्ली—'अन्धे कोठे मे से ऐसी बात मत कहो।'

सुभद्रा—'तुम्हारे पास तो उजेला है।'

लल्ली—'अकेले तो अंधेरा-उजेला दोनो बराबर है।'

सुभद्रा—'दुकेले से उजेला भी अंधेरा हो जायगा।'

लल्ली—'और अंधेरा उजेला!'

सुभद्रा—'आज तो बड़ी अड पकड़ रहे हो।'

लल्ली—अपने मन से पूछो। जब से आई, दिखलाई तक नही दी।'

सुभद्रा—'मन की तो बतला रहा है। किसी मतलब से आये होगे।'

लल्ली—'मतलब न होता, तो मसाहिबजू के यहा ही न चिलम-तम्बाकू चलती।'

सुभद्रा—'तम्बाकू चिलम दे जाऊँ?'

लल्ली—किसी बहाने सही, अन्धी कोठरी तो छोड़ो।'

सुभद्रा मुस्कराती हुई बाहर आई। चिलम तम्बाकू दी और एक ओर बैठ गई। तम्बाकू भर कर लल्ली चिलम पीने लगा।

सुभद्रा निकटवर्ती ग्राम बड़ौनी मे ब्याही थी। लल्ली ने धुआँ खींचते-खींचते पूछा—'बड़ौनी क्या जल्दी जाना होगा ?'

लल्ली सुभद्रा का पुराना परिचित था और दिल्लगी करना तथा चिढ़ाना अपने अधिकार के भीतर की बात समझता था। सुभद्रा उस पुराने परिचय के व्यवधानो मे अपेक्षा और उपेक्षा दोनो अवगत करने लगी थी। बोली—'जल्दी जाऊँ या देर से, तुमको क्या पड़ी है ?'

लल्ली ने उत्तर दिया—'पड़ी है तभी तो पूछा।'

सुभद्रा—'फिर इतने दिनो बाद आकर क्यो पूछा ?'

लल्ली— हमने तो हाल ही मे सुना था।'

सुभद्रा— झूठे हो !'

लल्ली—'सच्ची बात है, सुभद्रा ! सिपाही हैं। इधर-उधर के काम लगे रहते है। फुरसत ही नही मिलती।'

सुभद्रा—'रोज तो तुमको यहाँ से निकलते देखती हूँ।'

लल्ली सड़क की ओर देखने लगा। बोला—'वे दिन कैसे मीठे थे, सुभद्रा ! कभी नही भूल सकता हूं।'

सुभद्रा चिढ़कर बोली—'न कोई दिन मीठे होते है और न खट्टे। अपने मन की दशा पर निर्भर है।'

लल्ली ने मधुरता के साथ प्रश्न किया—'तुम्हारा मन कैसा है, सुभद्रा ?'

सुभद्रा ने मुँह फेरकर उत्तर दिया—'जैसा तुम्हारा नही है।'

लल्ली ने उत्ते जित होकर कहा—'कभी परीक्षा कर लेना। या तो मुसाहिबजू के लिये गर्दन दे सकता हूँ या तुम्हारे लिये।'

सुभद्रा बोली—'देखूँगी।'

इतने मे सामने से सुभद्रा का पिता कुल्ली आता दिखाई पड़ा। सुभद्रा ने भौंहें चढ़ाकर कहा—'तुम्हारे लिये यह बड़ी देर से बैठे है।'

लल्ली बोला—'एक चिलम तम्बाकू भी पी चुका हूं।'

कुब्जा ने पौर मे जूते उतारते हुए आदर पूर्वक पूछा—'माते को छालिया नही खिलाई ?'

सुभद्रा ने उत्तर दिया—'तम्बाकू के सामने छालिया को कौन लेने लगा ?'

कुब्जी को असन्तोष नही हुआ। वृद्ध कुब्जी की सुभद्रा वय-प्राप्त लड़की थी। लल्ली प्रसिद्ध मुसाहिबजू का पदगौरवान्वित सैनिक था और मुसाहिबजू के गहने गिरवी रखने के लिये बहुधा यहीं आया करता था। यद्यपि लल्ली और सुभद्रा के वास्तविक सम्बन्ध की बात उसको मालूम न थी, तथापि वह उनके प्रासंगिक सम्पर्क मे कोई असुविधाजनक सन्देह अनुभव नही करता था। उसका काफी लेन-देन था: परन्तु वह उसकी सीमा को सदा संकुचित प्रकट किया करता था और अपना रहन-सहन इतना सादा, यहाँ तक कि दुखा, प्रदर्शित करता था, जिसमे उस समय के झंझट और अशान्ति मे कोई उसकी असाधारण लोगो मे गिनती न कर सके।

कुब्जी ने एक चिलम और तैयार की। लल्ली को देकर शिष्टता के साथ आने का कारण पूछा। लल्ली ने चरखारी वाली सरकार की सोने की जडाऊ पहुँचियाँ सामने रखकर कहा—'पाँच सौ रुपये इसी समय चाहिये।'

ललचाई हुई आँखों को एक ओर नियन्त्रित करके कुब्जी बोला, 'मात, हम तो मुसाहिबजू की चाकरी के लिये सदा हाजिर है, परन्तु आप ही सोचो, कितना पिछला हिसाब पड़ा हुआ है और इसी समय इतने रुपये तो शायद ही घर मे निकले।'

लल्ली ने सुभद्रा का लिहाज करते हुए कहा—'रुपये के, आपके यहा, भगवान ने भण्डार भर रखे हैं। रह गया हिसाब, सो जितना रुपया मुसाहिबजू के यहा गया है, सब सोने के जेवर पर

गया है। उठाने आवेंगे, तो आपका ब्याज और असल देंगे, नहीं तो सोना तो आपके हाथ में है ही। कहो सुभद्रा, मैंने गलत तो नहीं कहा ?'

सुभद्रा ने साधकर उत्तर दिया—'न मुझको गहने से प्रयोजन है और न रुपये से। मुझको तो चैन से रोटी खाने को मिल जाती है, और मुझको करना ही क्या है।'

कुञ्जी बोला—'माते, जो-कुछ मेरे पास चार पैसे की गृहस्थी है, इसी लड़की के लिये है। अड़ौना में एक ब्याह है, इसलिये एकाध बार और भेजूंगा, फिर तो जो कुछ रूखा-सूखा यहां मिले, यहीं रहेगी। मेरे अब हाथ-पैर नहीं चलते। यह होशियार है। थोड़ी-सी पूंजी का जो मेरा लेन-देन है, चला लेगी।'

लल्ली ने कहा—'सुभद्रा, जाओ तो पांच सौ रुपये निकाल लाओ। मुझको शीघ्र ही मुसाहिबजू के यहां हाजिरी देनी है। लो सेठ, तुम सोना और इसके जवाहिर परख लो।'

'क्या परखना है।'—कहते हुये कुञ्जी ने बारीकी के साथ पहुंचियों को परखा। बाप का संकेत पाकर सुभद्रा रुपया लेने भीतर चली गई।

कुञ्जी बोला—'आपने कहा, सो बिलकुल ठीक है, परन्तु गहने पर गहना रखते जाने से रुपये का तो आना ही रुक जाता है। जब तक हिसाब न हो जाय या यह हुकुम न हो जाय कि गहना असल और ब्याज में डुबो दिया, तब तक बेच नहीं सकता और बिना बेचे रुपया हाथ आ नहीं सकता। आप ही बतलाओ क्या करूँ ? छोटा-सा लेन-देन है। थोड़े रुपये कभी कभी आ जाते हैं। अब ये इकट्ठे पांच सौ रुपये चले बुरा न माना जाय, यदि कोई बड़ी रकम मांगने वाला सोना लेकर आ जाय, तो नाहीं करनी पड़ेगी, क्योंकि देना फैलाने के लिये लेना गिनती में पहले है।'

लल्ली उपयुक्त व्याख्या के चिन्तन मे चिलम पीता रहा परन्तु बोला कुछ नही। सुभद्रा पाँच सौ रुपये लेकर आ गई। लल्ली के सामने रख दिये। लल्ला ने गिन कर बाध लिये। कुञ्जी पहुचियो को सावधानी के साथ रखने के लिये भीतर चला गया। सुभद्रा उसके पीछे-पीछे जाने को हुई।

लल्ली हँसकर बोला—'आगे कभी रुपये की जरूरत पडी, तो सेठ से न माग कर तुमसे लूँगा।

सुभद्रा ने मुस्कराकर कहा—'मेरे पास क्या रखा है? गहना क्या, मोती-जवाहर भी लाओगे, तो मुझसे कुछ न पाओगे।'

लल्ली धीरे से बोला— कुछ तो पाऊँगा।'

कोठरी मे प्रवृष्ट पिता की ओर देखते हुये सुभद्रा ने कहा—'मेरे पास थोडे से ये चादी के जेवर है और एकाध हल्का सा सोने का है। पैसा-कौडी गाठ मे एक नही। मै क्या लेन-देन करूँगी?

लल्ली बहुत धीरे से कहता हुआ चला गया—'बतलाऊगा, तुम्हारे पास क्या है।'

— ६ —

मराठी सेनाएँ अँग्रेजों की सेनाओं से हार चुकी थीं, अर्थात् मराठे राजाओं द्वारा परिचालित राजनीति में विभक्त—यद्यपि फ्रांसीसी, जर्मन इत्यादि यूरोपियन सेनानायकों द्वारा शिक्षित—भारतीय सेनाएँ अँग्रेज-राजनीति से परिचालित अङ्गरेजों द्वारा शिक्षित भारतीय सेनाओं से हार गई थीं। ग्वालियर, इन्दौर इत्यादि प्रबल मराठे नरेश अङ्गरेजों की सन्धियों को क़बूल कर चुके थे परन्तु उनके हृदयों ने अङ्गरेजों के लोहे को मान लिया हो, सो नहीं हुआ था। सामाजिक अशान्ति के बाहरी चिन्ह कम हुये दिखलाई पड़ते थे, परन्तु लोगों के मन में विश्वास नहीं बैठा था कि जो कुछ परसों तक होता रहा था, वह कल फिर से न हो उठेगा। ग्वार खाये किसी ऊबट घड़ी की बाट जोह रहे थे। व्यापारीवर्ग कुछ साँस लेने लगा था, परन्तु हम कब उखड बैठे, इसकी धुक-धुक लगी हुई थी। चाहे जिस तरह की शङ्का-कुल कहानी को कोई भी भयभीत व्यक्ति विश्वास किये जाने की आशा पर उत्पन्न, विकसित और विस्तृत कर सकता था।

राजा विजयबहादुर सिंह को उनके विश्वस्त हरकारों ने समाचार दिया कि ग्वालियर-राज्य दतिया पर आक्रमण करने की गुप्त योजना कर रहा है और शायद बड़ौनी के जागीरदार ग्वालियर का साथ दें। ग्वालियर से दतिया की कई बार खटकी थी, जिसमें किसी प्रकार दतिया-राज्य ग्वालियर में सम्मिलित होने से बाल-बाल बचता गया था। बड़ौनी के जागीरदारों से दतिया का मनमुटाव औरङ्गजेब के देहान्त के बाद से ही चला आया था, परन्तु कोई ऐसी घटना नहीं हुई थी, जिससे इस मनमुटाव को तोप-तलवार का रूप मिल पाया हो। फिर भी वातावरण में शङ्का की प्रधानता थी। अङ्गरेजों के साथ सन्धि

हाल ही में हुई थी। उनकी सहायता अपने हितों की रक्षा के निमित्त जैसे और रईस लेते थे, वैसे ही दतिया-राज्य भी ले सकता था, परन्तु अपने को सबल बना लेने पर बाहर के मित्र भी प्रबल सहायता दे सकते हैं, यह सोचकर राजा विजयबहादुर सिंह ने और उनके सम्मतिदाताओं ने पहले अपनी सेना को बली बनाने और फिर अङ्गरेजों को सहायता के लिये न्योतने का निश्चय किया।

राजा ने मुसाहिबजू दलीपसिंह को बुलाया। बुलाने के पहले ही मुसाहिब को बुलावे का उद्देश्य विदित हो गया था। उन्होंने अपने खास आदमी जागीर के और आस-पास के गावों में तुरन्त सैन्य संग्रह के लिये भेज दिये।

दरबार में राजा मसनद पर थे। तकिया से टिके हुक्का पी रहे थे। दीवान और थोड़े से अन्य विशिष्ट दरबारी अदब के साथ नीचे बैठे थे। मुसाहिब भी मुजरा करके यथास्थान बैठ गये। राजा ने आदर के साथ दलीपसिंह से कहा—'मुसाहिबजू कुछ खटका सुनने में आया है। आशा है कि सकट भगवान की दया से आयगा नहीं, परन्तु ज़माना अच्छा नहीं है, इसलिये अपनी सेना को चाक-चौबन्द रखना चाहिये।'

दीवान बोला—'महाराज की मर्जी ठीक हुई है। मुसाहिबजू की सेना तो तैयार ही रहती है। यदि कोई कसर हो भी—मेरी समझ में कसर बिलकुल नहीं है—तो शीघ्र पूरी हो जायगी।' दीवान जानता था कि मुसाहिब दलीपसिंह राजा के प्रियपात्र हैं; परन्तु वह राजा की चिन्ता से भी परिचित था।

मुसाहिब ने नम्रता और दृढता के साथ कहा—'दीनबन्धु की जो आज्ञा हुई है, उसका पालन तुरन्त होगा।'

राजा—'आपके पास १२०० सिपाही हैं?'

मुसाहिब—'हाँ महाराज, और भी बढ़ाये जा सकते हैं।'

राजा ने मन में खजाने की ओर आँख फेरकर कहा—'नहीं इतने ही पौकस रक्खो। बढ़ाने की जरूरत नहीं है। बात सधते सधते अङ्गरेजों की भी सहायता आ पहुँचेगी। सन्धि-पत्र में शर्त है।'

कहा किसी ने नहीं परन्तु सोचा सभी ने कि जैसे अनेक पूर्व सत्ताधारियों ने सन्धि-पत्रों की अवहेलना की, उसी प्रकार अङ्गरेज भी कर सकते हैं। इसलिये यही निश्चय स्थिर किया गया कि सेना इकट्ठी करके तैयार हालत में रखली जाय।

इनके उपरान्त शिकार और आमोद-प्रमोद के प्रसङ्ग में दरबार का वार्तालाप सरक गया।

राजा—'उस तेंदुये की छाल बनवाली ? सुना है, बड़ा था।'

मुसाहिब—'हाँ दीनबन्धु, बड़ा था। परन्तु गले की खाल कट जाने के कारण मेरे पसन्द नहीं आई। एक साधू ने भजन के लिये माँग ली, सो मैंने दे दी।'

दीवान—'वही साधू होंगे, जो आदे के बाग में ठहरे थे ?'

मुसाहिब—'जी हाँ, कुछ दिनों ठहरे थे—'

राजा—'रामसागर पर एक साधू ठहरे हैं। उन्होंने खबर दी है कि पास ही डांग में नाहर की जोडी ठहरी हुई है।'

मुसाहिब—'महाराज, सेहुडे के पास से भी नाहरों का समाचार आया है।'

राजा—'पिछली बार सेहुडे जाते हुये इन्द्रगढ़ में जलसे के लिये रुक गये थे और फिर दतिया लौट आना पड़ा था। वहाँ तक पहुँच ही नहीं पायें।'

दीवान—'दिल्ली से एक बीनकार आये है। गोसाईं है। बड़ी तारीफ सुनी है।'

राजा—'बिब्बो भी तो इन्द्रगढ़ में यहीं आगई है। गोसाईं जी उसके साथ बीन बजा सकेंगे ?'

दीवान—'महाराज, हाथ तो उनका बहुत तैयार है।

राजा—'तुमने सुना है ?'

दीवान—'महाराज !'

राजा—'तो अलग से भी सुनेंगे और बिब्बो के गले के साथ भी।' इस प्रकार शिकार से शुरू होकर दरबार का वार्तालाप गायिका के गले में समा गया।

— ७ —

३-४ दिन के भीतर ही मुसाहिबजू की गढ़ी के आस-पास सैनिकों के झुण्ड के झुण्ड एकत्र होने लगे। सब के पास बन्दूक और ढाल-तलवार। मूंगिये कपडे पहिने और बुन्देलखण्डी भव्यू जूते। न कोई नियम, न कोई सयम। क़वायद-परेड बहुत थोडे सिपाहियों को सिखाई गई थी; पर इनकी नकल अन्य सिपाही उत्साह और ध्यान के साथ कर रहे थे, जो हवालदार के परिश्रम की कमी की पूर्ति कर रही थी। एक बड़ा झुण्ड भरतगढ़ के आस पास ठहर गया, बाकी कोई कही, कोई कही। पर सबके भोजन के लिये अटाला भरतगढ़ मे ही था। ब्राह्मण रसोइयों के रसोड़ों मे दाल-रोटी और घी का प्रबन्ध था। यद्यपि सिपाहियों मे कतार और घड़ी की सुई की तरह की पाबन्दी न थी, तो भी उनके दल और दस्ते बॅटे हुये थे। इन दलों और दस्तों के अलग अलग अफ़सर और कर्मचारी थे। बहियों मे नाम, पता-ठिकाना, वेतन, हथियार इत्यादि दर्ज था जो बख्शी नाम के उच्च पदाधिकारी के हाथ मे रहती थीं। सेना मे मिस्त्री थे, कमठाना था। सिपाहियों मे अपने सेनापति और सरदार की आन को पकड़ने और उसके लिये अपने प्राण आहुत कर देने की बान थी। इन्ही सिपाहियों की सहायता से दक्षिण मे बीजापुर और गोलकुण्डा तथा उत्तर पश्चिम मे काबुल और कन्दहार को औरङ्गजेब ने विनय सिखलाई थी।

श्रीवास्तव की ढाली हुई तोपों ने उत्तर में सिन्ध-सतलज और दक्षिण मे कृष्णा-कावेरी मुहिमों और मोर्चों को मरोड़ा था। पड़ोसी सिन्धिया के डीबौयॅ, पैरों और फीलोष सेनापति बुन्देलखण्डी कड़ाबीन और तलवार को पहिचानते थे, परन्तु बुन्देलखण्डी सेना के पास नही थी तो समझी-सुलझी हुई राजनीति

और अपने को को सुधारने-सम्हालने की प्रवृत्ति। उनके नायक और सञ्चालक अदूरदर्शी, आलसी और निकम्मे हो गये थे। तब सिपाही पुराने हथियारों के भरोसे नई टेकड़ी के साथ पुरानी डींगों को मारने के सिवाय और करते ही क्या? और टोली बाँध-बाँध कर शराब, शिकार, गांजा-भांग और कम से कम तम्बाकू के दौरों की ओर क्यों न दौड़ते? इनका नायकत्व सड़ गया था और परम्परा गल गई थी। ये लोग लोहे के बेकार लोढ़ों की तरह बिखरे से पड़े थे।

छावनीबन्द सिपाही थोड़े ही रह गये थे, बाकी भुमियाँ थे और केवल भुमियाँ रह गये। बहुत शीघ्र बड़ा परिवर्तन हो गया। थोड़े से ही वर्ष पहले इसी प्रकार की बुन्देलखण्डी सेना ने अङ्गरेजी सेना को विन्ध्याचल की घाटियों और बेतवा-धसान के भरकों में विध्वन्स कर दिया था। अङ्गरेजी सेना ने उस पराजय से सबक सीखा और कुछ ही महीनों पीछे विजेताओं को परास्त करके सन्धि की शर्तों में बाँध लिया—यद्यपि जिन शर्तों से बाँधा था, वे ज़रतारी रेशम से बना हुई थीं। परन्तु अङ्गरेजी सैन्य के बुन्देलखण्डी विजेताओं ने कुछ नहीं सीखा। सीखा यदि तो केवल बख्शीजी के बही-खातों में सिपाहियों का वेतन बकाया में डालना।

मुसाहिब दलीपसिंह के अधिकांश सिपाहियों का वेतन भी महीनों की बकाया में पड़ा था। सेहुड़ के आस-पास से सिपाही लड़ने की उमङ्ग और बकाया वेतन की वसूली की आशा में—दतिया में, शीघ्र जमा हो गये थे। मुसाहिब को बख्शी ने सम्पूर्ण स्थिति, करारी आर्थिक स्थिति समझा दी मुसाहिब बहुत चिन्तित हुये।

जागीर के गांवों से लगान वसूल हो नहीं सकता था। सिपाहियों की संख्या कम नहीं की जा सकती थी। बख्शी के

बही-खातों को छेका या मिटाया नहीं जा सकता था। सेना के सग्रह और तैयारी का वचन छाती ठोक कर दरबार में राजा को दे आये थे। जमा होते चले जाने वाले सिपाहियों की चहल पहल बढ़ती चली जा रही थी। उनके हो-हल्ले, हास्य-परिहास और गपशप की तह में तनख्वाहों का बकाया दृढ़ता के साथ झाक रहा था। मुसाहिब चिन्तित थे, परन्तु घबराहट उनकी प्रकृति में न थी। चरखारी वाली सरकार का, अन्त में चरखारी राज्य का सहारा और अपना उदार मन घबराहट को रोकने में सहायक बन रहा था। परन्तु कहने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी, बिना कहे काम बन भी नहीं सकता था। एक-एक क्षण दुस्सह होता चला जा रहा था। अन्त में रावर (अन्त.पुर) में दूती की मारफत अपने आने की खबर भेजी। बुलावा आगया। बरबस मुस्कराते हुये सामने पहुचे। नौकरानी पान बना कर लाई और देकर चली गई। पर मुसाहिब बात न कर सके।

चरखारी वाली सरकार ने अपनी कल्पना से सब समझ लिया, तो भी हँसकर पूछने लगी—'सब सिपाहियों के लिये डेरे का प्रबन्ध हो गया ?'

'हो गया है।'—मुसाहिब ने शीघ्र उत्तर दिया—'कहीं लड़ाई लग जाय, तो मन भी खूब बहले और सिपाहियों के हथियारों का मोर्चा छूट जाय।'

'कितने आदमी इकट्ठे हो गये है ?'

'लगभग १२०० होंगे।'

'बख्शी जी ने हाजिरी तो ली होगी ?'

'ली तो है, ठीक-ठीक संख्या उनके पास है।'

'रसोइये, रसोई तो ठीक समय पर बनाते, देते चले जा रहे है ?'

'वह सब प्रबन्ध हो गया है। सिपाही उमङ्गो मे हैं और किसी भी सेना से टक्कर ले सकते है।'

'अङ्गरेज़ों से तो नहीं डरते ?'

'डरते तो यमराज से भी नही हैं, परन्तु हथियार अङ्गरेज़ो के पास अच्छे है।'

'आप भी अपनी सेना को अच्छे हथियार दीजिये।'

'सो तो बहुत आवश्यक है ही, परन्तु इसका प्रबन्ध राजा को करना चाहिये।'

'सिपाहियो के वेतन का ?'

'यह जिम्मा हमारा है। परन्तु.....परन्तु अभी रुपया तो है ही नही और उनके कई महीने बाक़ी मे पडे है।' मुसाहिब ने सिर ज़रा नीचा करके कहा—'यही तो चिन्ता का कारण हो जाता है।'

चरखारी वाली ने उत्तर दिया—'आप चिन्ता कभी मत किया कीजिये। इन सबकी बाकी आज ही चुका दीजिये।'

मुसाहिब—'कैसे ?'

चरखारी वाली—'जैसे मै कहू।' मुसाहिब अपनी पत्नी का मुँह ताकने लगे। उन्होंने हँसते हुये कहा—'लक्ष्मी माते की मारफत किसी बड़े साहूकार के यहा से रुपया मँगवा लीजिये। मेरे पास एक नथ कम से कम तीन हज़ार रुपये का है।'

मुसाहिब की आँख मे आँसू आगया। उसको चटपट पोंछ कर अत्यन्त कृतज्ञ दृष्टि से मुसाहिब ने पत्नी के प्रस्ताव को स्वीकृत किया। बोले—'मै चाहता हूं कि चाहे ग्वालियर हो चाहे अङ्गरेज़, लड़ाई हो पड़े, तो वैरियो के छक्के छुटा दूँ और आपको मुँह दिखलाने लायक बनूं।'

चरखारी वाली ने कन्धे पर हाथ रखकर मुस्कराते हुये कहा-'ऐसी बात मत कहिये। आपका बड़ा नाम है। काम भी बड़े

करिये, परन्तु बख्शी जी के बही-खातों पर ध्यान रखिये, १२०० आदमियों को वेतन तो अवश्य दीजिये; किन्तु उनको सुसज्जित बनाये रखिये, उनको यदि ढील मिली तो, गाढ़े समय पर काम न दे सकेंगे और आपके नाम को बट्टा लगा देंगे।'

'ऐसा ही करूँगा।'—मुसाहिब ने अपनी पत्नी का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा।

थोड़ी देर बाद वह अपनी ड्योढ़ी में चले आये। चरखारी वाली की मुस्कराहट ने बिदा ले ली। सन्दूक खोलकर उन्होंने अपना नथ निकाला। अब उस सन्दूक में थोड़ी-सी अंगूठियों और कुछ साधारण सोने के आभूषणों को छोड़कर और कुछ न था। आकृति दृढ़ करके उन्होंने अपनी एक परिचारिका के हाथ नथ लल्ली के पास भिजवाया। लल्ली नथ को एक बड़े साहूकार के यहां २५००) रुपये में गिरवी रखकर रुपया ले आया। बख्शी ने परिश्रम के साथ हिसाब करके बाकी चुकाई। कुछ बक़ाया अनुमान-भूत थी, उसको काट-कूट कर खाता ड्योढ़ा किया। रात के दस बजते बजते सब हिसाब साफ हो गया और मुसाहिब को समाचार दे दिया गया। २००) बच गये वह मुसाहिब के हाथ में दे दिये गये। मुसाहिब ने प्रसन्नता पूर्वक इन रुपयों को भीतर पहुँचा दिया, परन्तु उनके विचार में यह नहीं आया कि बख्शी के बही-खातों पर ध्यान कैसे रक्खा जाता है।

— ८ —

दतिया की तैयारी का समाचार विविध और विस्तृत रूप धारण करके ग्वालियर पहुँच गया। सिंधिया सरकार अङ्गरेज़ों की उसी सन्धि से बँधी हुई थी, जिसमे दतिया, और सिंधिया सरकार को ज्ञात था कि दतिया के साथ अङ्गरेज़ों की मैत्री तथा बराबरी की सन्धि है, शक्ति भले ही दतिया की उसके अनुपात मे न होने के समान ही हो। इसलिये ग्वालियर से अधिकार-मूलक समाचार उसी सप्ताह दतिया मे आ गया कि राजा किसी प्रकार की द्विविधा मे न पड़े और ग्वालियर की ओर से निशंक रहे।

राजा और उनका दरबार ग्वालियर की ओर से यथा-सम्भव बेखटके हो गया, और राज्य का जीवन पुराने ढर्रे पर फिर चलने लगा। मुसाहिब की सेना तितर-बितर होकर अपने घरों को चली गई। दतिया मे उतने ही सैनिक और शिकारी रह गये, जितने साधारण समय मे रहा करते थे। मुसाहिब और उनके बख़्शी ने ज़रा चैन की साँस ली।

उन्हीं दिनो रनवास मे एक उत्सव हुआ। महारानी की परिचारिकाये चरखारी वाली सरकार को निमन्त्रित करने के लिये आईं। वह भोजन करने के उपरान्त शयन कर रही थीं। परिचारिकाओं का पान-सुपारी से सत्कार करवाया, परन्तु वह अपने स्वभाव के विरुद्ध पलङ्ग पर ही लेटी रहीं। बोलीं—'मे अस्वस्थ हूँ। जी अच्छा रहा तो पीनस भिजवाने के लिये कहला भेजूँगी, अन्यथा मा.फ़ी के लिये विनती कर देना।'

परिचारिकाये शिष्टाचार के बाद चली गईं। उनके जाने के पश्चात् चरखारी वाली सरकार चादर से मुँह ढंक कर सिसक-सिसक कर रोईं। रसोइनों को मालूम हो गया। अन्य

परिचारिकाओं से भी छिपा न रहा। अन्त में ड्योढ़ी पर मुसाहिब के कुछ सैनिकों के भी कान में बात पहुँच गई; परन्तु मुसाहिब से किसी ने नहीं कहा। सैनिक—खासकर मुसाहिब का शिकारी वर्ग—विशेष चिन्तित हुआ। कारण जानने की उत्सुकता बढ़ी। कुतूहल ने शीघ्र व्यथा का रूप पकड़ा।

लल्ली को अकेले में ले जाकर रमू मिहतर ने कहा—'माते, ऐसा कभी नहीं हुआ। क्या क़िले से आई हुई परिचारिकायें कोई अपमान कर गई हैं ?'

लल्ली ने उत्तर दिया—'मैं स्वय हैरान हूं। अपमान करने का साहस किले के बाहर-भीतर किसी में नहीं है।'

'फिर क्या बात हो सकती है ?'

'मेरी भी समझ में नहीं आ रहा है।'

'पता लगाओ।'

'बड़ा कठिन और नाजुक काम है।'

'पर हमारा धर्म है कि मालिक की सब प्रकार से सेवा करें।'

'मुसाहिबजू से कहें। वह भीतर जाकर समझा-बुझा लेवें।'

'कदापि नहीं, उनके बिरते के भीतर की बात होती, तो जवाब वाली स्वयं आकर उनको बुला ले जाती। तुम किसी जवाब वाली से पूछो या पुछवाओ और यह कहलाओ कि सारी सेना क़दमों में सिर काट कर चढ़ा देगी, मर्जी भर हो जाय।'

'हाँ, ठीक मालूम होता है, रमू कक्का! इसमें किसी को कुछ बुरा नहीं लगेगा।'

लल्ली ने जवाबवाली को बुलाया। उससे अकेले में गहना गिरवी और रुपये-पैसे की बात-चीत हुआ करती थी, इसलिये रमू के सुझाव के आधार पर इस विषय की चर्चा एकान्त में करने में कोई हिचक नहीं हुई। जवाबवाली को खुद कुछ मालूम

न था, परन्तु ढूंढ़-खोज के बाद कारण बतला जाने का आश्वासन देकर वह चली गई।

वह परिचारिका चरखारी वाली सरकार के पलङ्ग के निकट चुपचाप पहुची। वह रोने के उपरान्त सो गई थीं। उत्सुकता से विवश होकर परिचारिका उनको जगा लेने को भी तैयार थी, किसी तरह धैर्य धर कर वह भूमि पर एक पीढ़ा बिछाकर बैठ गई और चरखारी वाली के जागने की प्रतीक्षा करने लगी। उसने एक घण्टा दर्जनों जमुहाइयां लेकर काट पाया। जागकर चरखारी वाली बिस्तर पर बैठ गईं परिचारिका से आश्चर्य के साथ पूछा—'कितनी देर से बैठी हो?'

'अभी थोड़ी देर हुई, जब यहा आई।' उसने उत्तर दिया, फिर सावधानी के साथ प्रश्न किया,—'उत्तर लेने के लिये महलो से कोई न कोई फिर आता ही होगा।'

चरखारी वाली जरा चकित होकर बोली—'क्या मै बड़ी देर से सो रही हूं?' उनके कण्ठ मे किसी गत दुःख की दारुणता का अवशेष अब भी था।

चतुर परिचारिका ने उत्तर दिया—'आप खूब सोई है, यह आपके स्वर से ही विदित हो रहा है।'

कण्ठ-स्वर के स्मारक ने स्मृतियो को फिर जगा दिया। चरखारी वाली की आँखे छलछला आई। परिचारिका ने तुरन्त खड़े होकर कहा—'जल ले आऊँ?'

चरखारी वाली बोलीं—'नही; बैठ जाओ। प्यास नही है।'

'हुकुम होवे।' परिचारिका ने प्रस्ताव किया।

चरखारी वाली ने दृढ़ता के साथ कण्ठ का संयम करके कहा—'मैं क़िले नही जाऊँगी।'

'महाराज',—परिचारिका हाथ जोड़कर उत्साह के साथ बोली—'चरखारी और दतिया एक कोटि के राज्य हैं। आप

चरखारी की बेटी हैं और वह दतिया की रानी हैं। कोई अन्तर नहीं है। आप न जायँ, तो कोई कुछ नहीं कह सकता है। केवल यह भय लगता है कि महारानी साहब स्वयं यहां न आजावें इसलिये कुछ न कुछ उत्तर शीघ्र भिजवा दिया जाना आवश्यक है।'

चरखारी वाली ने अपने सहज स्वर में कहा—'हमारा उनका आना-जाना बना रहता है, परन्तु आज जैसी अवस्था में मैं क़िले नहीं जाना चाहती।'

परिचारिका—'मैं समझी नहीं।'

चरखारी वाली—'इस उत्सव में अन्य जागीरदारों और सेठ साहूकारों तथा अफ़सरों की बहू-बेटियाँ इकट्ठी होंगी। मेरे पास कोई आभूषण नहीं है। सबकी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ेगी। मायका चरखारी न होता तो कोई बात न थी। अब नंगे हाथ और गला लेकर महलों में क्या मुँह दिखलाऊँगी? वहाँ तमाम स्त्रियाँ कानाफूसी करेंगी। मेरी अवस्था की आड़ लेकर और लोगों का नाम बाद-विवाद और गपशप में घसीटा जावेगा। मैं अपने कानों को कहाँ तक मूँदे रहूंगी?'

आभूषणों की कमी के कारण उत्पन्न उद्विग्नता को शान्त करने के प्रयोजन से परिचारिका ने कई बार 'महाराज' शब्द से चरखारी वाली को सम्बोधित किया। वैसे भी परिचारिकायें इस शब्द द्वारा सम्बोधन किया करती थीं, परन्तु इतने अनेक बार नहीं।

'महाराज', परिचारिका ने कहा—'बात ठीक है। आप तो क्या मालिक के विषय में कोई भी छोटी-मोटी बात, हम लोग जो आपका निमक खाते हैं, नहीं सह सकते।'

चरखारी वाली—'मैं सोचती हूं, किस प्रकार आज का निमन्त्रण बरकाया जावे। इसके बाद ही मैं शीघ्र चरखारी जाने की तैयारी करूँगी।'

परिचारिका—'महाराज, जब आज्ञा होगी, चरखारी का जाना हो सकता है।'

चरखारी वाली कुछ सोचने लगीं। सोचकर बोली—'महलों मे प्रकट हुये बिना न रहेगा कि आभूषणों के न होने के कारण मैंने बहाना बनाया है।'

परिचारिका कुछ न कह सकी। उसने सिर नीचा कर लिया। चरखारी वाली की आँखों मे फिर आँसू आ गये। परिचारिका ने उत्तेजित होकर कहा—'मैं महलों में कहलाये भेजती हूं कि शरीर अस्वस्थ है, इसलिये पीनस न भेजी जावे।'

गले को संयत करके चरखारी वाली ने सहमति दे दी।

परिचारिका ने लक्ष्मी को अकेले मे बुलाकर सब हाल सुना दिया और उसमें अपनी ओर से थोड़ा-सा अतिरञ्जन करके चेतावनी दी—'मुसाहिबजू को सूचित न किया जाय और न सिपाहियों मे बात फैलनी पावे। खबरदार!'

लक्ष्मी ने रमू को अकेले मे ले जाकर सब बात समझा दी और बात को फैलाने न देने का अनुरोध किया। रमू ने अपने वर्ग के लगभग सभी सिद्दतर सैनिकों को बात सुना दी और सबको चुप रहने का आदेश कर दिया। ये सैनिक अपने स्वामी की पत्नी की इस दशा पर क्षोभ मे पड गये। लक्ष्मी ने किले मे खबर भेज दी कि अस्वस्थता के कारण चरखारी वाली सरकार उत्सव मे सम्मिलित न हो सकेंगी।

थोड़ी देर मे नङ्गी तलवारें लिये हुये घुड़सवार आगे-पीछे महारानी की पीनस को घेरे मुसाहिबजू की गढ़ी के पास आ गये। एक ने आगे बढ़कर समाचार दिया—'महारानी साहब पधारी हैं।'

मुसाहिब ने झटपट साफा बाँधा। कपड़े पहिनकर पीनस के पास दौड़ आये। मुजरा किया। ड्योढ़ी भीतर परिचारिकाओं

ने चरखारी वाली को खबर दी। पीनस वाले पीनस को ड्योढ़ी के भीतरी आँगन में छोड़कर चले आये। दूसरी पीनस से जो पीछे-पीछे आई थीं, महारानी की परिचारिकायें उतर कर गढ़ी के भीतर चली गईं। चरखारी वाली ने स्थिति की आकस्मिकता को अपने सहज दृढ़ स्वभाव से सम्भाल लिया।

महारानी का आगत स्वागत किया और ऐसे यकायक आने पर आश्चर्य और हर्ष प्रकट किया।

महारानी ने कहा—'मैंने सुना कि आपका जी अस्वस्थ है, सो देखने चली आई। आज किले में बड़ा उत्सव है। आपका न होना मुझको खलता, इसलिये मैं स्वयं आई।

चरखारी वाली ने विषण्ण स्वर में उत्तर दिया—'मैं महाराज अवश्य आती, परन्तु आज दोपहर से सिर और पेट में पीड़ा है इसलिये विवश हूँ।'

औषधोपचार के लिये महारानी ने सम्मति दी। चरखारी वाली ने टालाटूली की। महारानी ने लिवा जाने का बहुत हठ किया, परन्तु वह चरखारी वाली के हठ पर विजय न पा सकी। अन्त में उनके स्वास्थ्य की कामना करके महारानी किले को वापिस चली गई।

भीतर जो कुछ घटित हुआ था, अतिरेक के साथ परिचारिका ने लल्ली को सुनाया और लल्ली ने रमू को। और सैनिकों को भी किले के निमन्त्रण को स्वीकार न कर पाने का असली कारण मालूम हो गया। अज्ञान के वातावरण में यदि कोई रहा, तो केवल मुसाहिब दलीपसिंह। उन्होंने चिन्ता के साथ परिचारिका द्वारा स्वास्थ्य का सम्वाद मँगवाया। उनको आश्वासन दिया गया—'चिन्ता की कोई बात नहीं, जी शीघ्र ठीक होता चला जा रहा है, परन्तु किले में जाना न होगा।'

— ६ —

रात्रि को किले मे उत्सव हुआ—गाना-बजाना, हँसी-मजाक आदर-सत्कार। चरखारी वाली सरकार की कल्पना किले के भीतर पहुँची। उन्होने अपने को वहा पाकर देखा कि जितनी स्त्रियाँ उत्सव मे शरीक हुई है, गहनो से लदी है। आनन्द और परिहास का स्त्रोत फूट पडा है। उनके तन पर कोई गहना नही है। दर्शिकाओ के मन पर यह आतङ्क बैठ जाय कि उन्हे सासारिक रेलपेल के प्रति अत्यन्त तटस्थता है। परन्तु स्त्रियाँ उस आनन्द के वातावरण मे भी कानाफूसी कर रही है—'चरखारी वाली सरकार के घर मे चूहे दुलत्ती झाड़ते है। इनकी गांठ मे कुछ नही। यह तो फाकेमस्त है।

शरीर गरम होगया और तिलमिली छूटने लगी। परिचारिकाये और नौकरानिया दिन-भर के परिश्रम के कारण गहरी नीद मे धँस चुकी थी। जगाकर बातचीत करने के लिये लालसा हुई, परन्तु स्वाभाविक दृढ़ता ने लालसा को ठोकर दे दी, और वे फिर रो उठी। थोड़ी देर बाद उन्होने निश्चय किया कि इसी अठवारे मे मै अपने मायके—चरखारी—जाऊँगी।

भरतगढ़ के पहरुये जाग रहे थे। एक ओर रमू और उसका नाती पूरन पहरे न होते हुये भी सोए न थे। लल्ली खुर्राटे खीच रहा था। रमू और पूरन मे बहुत धीरे-धीरे बातचीत हो रही थी।

रमू—'बेटा, निमक से उऋण होने के लिये यह करना ही पड़ेगा।'

पूरन—'बब्बा, पहले कभी तुमने ऐसा किया है?'

रमू—'लड़ाइयाँ क्या है? क्या वे कोई यज्ञ है? डाके और लड़ाई मे कोई अन्तर नही। इसीलिये डाके को बगावत और डाकुओ को अपने यहाँ बागी कहते है।'

पूरन—'काकाजू सुनेंगे, तो क्या कहेंगे ? वे मार डालेंगे।'

रमू—'उन्हे मालूम ही क्यो हो पावेगा ?'

पूरन—'कितने आदमी चाहिये ?'

रमू—'१०-२० बहुत होंगे।'

पूरन—'कोई-न-कोई काकाजू से कह देगा। शायद सरकार ही उन्हे भेद बतला दे।'

रमू—'ऐसा नही होगा। लल्ली को रहस्य मे शामिल कर लेंगे।'

पूरन—'वह डाके का जेवर स्वीकार कर लेगी ?'

रमू—'क्यो नही ? लड़ाई द्वारा प्राप्त लूट-पाट की भूमि और सोना-चाँदी कौन ठुकरा देता है ? पुरुष नही छोड़ते है, तब स्त्रिया कैसे इनकार कर देगी ?'

पूरन—बब्बा, सरकार राजा की बेटी है।'

रमू—'राजा लोग ही तो, बेटा, यह सब कर सकते है। हम-तुम थोड़े ही इतना सब पचाने की शक्ति रखते है।'

पूरन—'और लोग तैयार हो जावेंगे ? ठकुरास का कोई साथ रहेगा ?'

रमू—लड़ाई मे कटने-मरने के समय यह सवाल नही किया जाता और न उस काम के लिये इस सवाल के करने की अटक है। हमारी मिहतर-मण्डली ठकुरास के बीच मे से निकल कर आगे बढ़ती है और हाथ करती है। इस काम मे भी केवल हमारी ही मण्डली रहेगी। लल्ली को अवश्य साथ ले लेंगे, जिसमे हमारे ईमान की साख बनी रहे, कोई यह नही कह सके कि हम लोगो ने लूट के जेवर मे से छदाम-भर भी अपने लिये निकाल लिया।'

पूरन सहमत होगया। अन्य मिहनरो को भी रमू ने सलाह मे पक्का कर लिया। लल्ली को भी जगाया। चरखारी वाली सरकार

की उदारता, पद की महानता और परिस्थितिजन्य उनकी क्षीणता लल्ली के मन को भी व्यस्त कर चुकी थी। अपने ऐसे मालिक को किसी प्रकार भी सुखी करने की वांछा उसको हौसला देती रहती थी। लड़ाई भी बड़े प्रकार की लूट-पाट ही है—रमू का यह सिद्धान्त लल्ली के धर्म में पहले से काफी स्थान घेरे हुए था। इसलिये इस षड्यन्त्र में अग्रवर्ती होने का अवसर उसने अविलम्ब ग्रहण किया।

उसी समय स्थान और समय के प्रसङ्ग पर चर्चा हुई। दतिया से बहुत दूर जाना किसी-न-किसी प्रकार की मुठभेड़ को आमन्त्रित करना था। साँप मरे और लाठी न टूटे। होली खेल ली जावे और कपड़ों पर रङ्ग न गिरने पावे। सीधी बात—डाका डाल कर जेवर इकट्ठे किये जायँ, चरखारी वाली सरकार की कमी की पूर्ति की जावे, मुसाहिबजू को मालूम न होने पावे और अपने शरीर भी घात-प्रतिघात से बचकर सही-सलामत घर लौट आवे।

दलील थी। हमारे ही पेट भरने के लिये सरकार ने अपने गहने एक-एक कर के साहूकारों को भेट कर दिये है। हमारे ही पैसे साहूकारों के पास है। युद्ध और डाके में कोई अन्तर नहीं। इसलिये साहूकारों पर ही डाका डालना चाहिये। और यह वर्ग प्रतिघात करने की समर्थता भी कम रखता था।

दूसरे दिन टोह लगाने पर मालूम हो गया कि कुछ व्यापारी दतिया से बड़ौनी रुपया और जेवर लेकर जा रहे है। यह भी मालूम हुआ कि कुछ साहूकारों की स्त्रियाँ सोने-चांदी के प्रचुर आभूषण लिये हुए बैलगाड़ियों पर इन्हीं साहूकारों की आड़-ओट और भीड़-भाड़ में बड़ौनी किसी विवाह में शरीक होने के लिये जा रही है। रमू, लल्ली और अन्य मिहतर शिकारी सैनिकों ने समय और स्थान तय कर लिया।

— १० —

सन्ध्या के पहले ही गाड़ियाँ दतिया से बड़ौनी के लिये चल दीं। बैल छरछरे थे और गाड़ीवान मुस्तैद। गाड़ियाँ पास-पास चली जा रही थीं और उन पर आगे-पीछे चार बन्दूक वाले भी बैठे हुये थे। गाडियों मे दतिया के कुछ साहूकार थे और स्त्रियाँ भी थीं। बहुत जल्दी करते-करते कई घण्टे की देर हो गई। फिर भी अभी समय था। उड़नू की टौरिया के पास गाड़ियाँ आगईं।

उड़नू की टौरिया का भीम गौरव उस समय और भी सघन वृक्षों से परिवेष्ठित था। कितने श्रम और व्यय से इस टौरिया पर चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ बनाई गई होंगी, और इसकी चोटी पर की बैठक और मन्दिर निर्माण के पहले एक साथ ही कितनी खीझ, कितनी लगन और कितनी भक्ति न अर्पित करा चुके होंगे। उडनू की टौरिया का भीम गौरव, विशाल सौन्दर्य, एकान्त भक्ति और विकट प्रयास का मानो सामंजस्य है—मानव-हृदय के पराक्रम और विलास का समन्वय, कल्पना के मोह और त्याग का सम्मिश्रण।

उड़नू की टौरिया के पास से बड़ौनी के लिये मार्ग सघन बीहड वन मे होकर गया है और कई जगह पथरीला है। बड़ौनी और दतिया के लगभग बीचों बीच रामसागर नाम का एक बडा तालाब है, जङ्गल से घिरा हुआ, पहाड़ियों से आवृत्त। एक ओर से पानी का निकास है। निकास ने अपने नाले को गहराई दी है और निरन्तर जल। नाले का घाट औघट है।

इस नाले के पास आते-आते गाड़ियों को सूर्यास्त हो गया, परन्तु थोड़ा-सा प्रकाश बाकी था। मार्ग का भय वाला हिस्सा पार कर आये थे। नाले के आस पास झरबेरी इत्यादि छोटे-छोटे पेड़ों के बिखरे हुये समूह थे और घाट पर घनी करौंदी

और अड़ूसे। नाले को पार करके गाड़ियाँ घाट चढ़ी ही थीं कि आगे की गाड़ी के बैल बिचके और लीक छोड़कर बगल की एक चट्टान से जा टकराये। पीछे की गाड़ियाँ अटक गईं। दो गाड़ियों की ज्वारियाँ उठ गईं। गाड़ीवान 'क्या हुआ, क्या है?' एक-दूसरे से पूछने लगे। यकायक २०-२५ आदमियों ने गाड़ियों को घेर लिया। सबके पास बन्दूकें थीं, सबके चेहरे पर ढाटियाँ चढ़ी हुई थीं। गाड़ियों में आगे-पीछे अगल-बगल बैठे हुये बन्दूक वालों ने अपनी बन्दूकें नीची कर लीं। भौचक्के रह गये। सोचा, चारों एक ही गाड़ी में बैठे होते, तो मुकाबला कर लेते। साहूकारों ने बन्दूकवालों को पुकारा, परन्तु उनके औसान डिग चुके थे। 'क्या है भाई, क्या है भाई?' कह कर चुप हो गये।

आक्रमणकारियों में ज़रा आगे एक लम्बा छरहरा मनुष्य था। उसने डाटकर कहा—'ज़रा भी चीं-चपाट की, तो सबको भून डालूंगा। तुरन्त चुपचाप रुपया और गहना हवाले करो।'

साहूकारों की पुकार पर उत्तर देनेवाले बन्दूक़वालों को दो-दो डाकुओं ने घेर लिया। स्त्रियां रोने लगीं। डाकुओं के उसी मुखिया ने कहा—'स्त्रियों को कोई नहीं छुयेगा। गहना चुपचाप उतार कर रख दो।'

यात्री इधर-उधर हाथ डालने लगे। स्त्रियों ने पैर के चाँदी के ज़ेवर उतारने का प्रयत्न प्रकट किया, परन्तु डाकुओं के सामने ज़ेवर एक भी नहीं आया। वे लोग समझ गये कि यात्री किसी सहायता के आ जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उसी अग्रवती ने गाड़ी में बैठे एक साहूकार के सीने पर बन्दूक़ अड़ा दी और गहरे धीमें स्वर में बोला—'अभीतक भलमनसाहत से काम लिया, अब जैसा करते हो, उसके लिये तुमको रोने वाले न मिलेंगे।'

एक बुढ़ी स्त्री भी यात्रियों के साथ थी। अनुनय के साथ वह बोली—'किसी को चोट-जरब मत पहुंचाओ। गहने ले लो

और हमारे पास पकवान, मिठाई है, वह खाने के लिये ले लो।'

डाकुओं के अगुये ने कहा—'तो जल्दी करो।'

स्त्रियां रोती थीं और अपने जेवर उतार उतार कर रास्ते की बगल मे डालती जा रही थीं। आध घण्टे के भीतर गहनों का ढेर लग गया, परन्तु फिर भी कुछ जेवर यात्रियों के पास बच गया। स्त्रियों ने पकवान निकाले।

उसी अगुये ने कहा—'खाना नहीं चाहिये। लेते जाओ हम लोग ऐसा खाना नहीं खाते।'

रोते-रोते वही स्त्री बोली—'अब पकवान का ही क्या करेंगे छुआछूत हो गई है।

डाकुओं मे से एक ने, जो जरा पीछे खडा था, कहा—'किसी को भी नहीं छुआ है।'

एक गाडी मे से एक स्त्री-कण्ठ से यकायक निकला—'ऐ!'

डाकुओं के मुखिया ने कहा—'हां, ठीक तो है। जेवर उतार कर हमारे हवाले न किया होता, तो छूना तो क्या और न-जाने क्या-क्या न करते।'

डाकुओं ने जेवर इकट्ठे किये। गाड़ियाँ आगे बढ़ीं। जेवर लेकर डाकू तेजी के साथ वहां से चल दिये। स्त्रियाँ रोती-कलपती हुई और पुरुष माथा नीचे किये तथा आह भरते हुये बड़ौनी की ओर मन्द गति से चले। जिस स्त्री के मुँह मे 'ऐ' निकल पडा था, उसने मार्ग को निष्कण्टक समझकर उसी गाडी में बैठी हुई एक स्त्री से धीरे से कहा—'गाड़ियों को इन लोगों ने छू लिया था, पकवान खाने लायक नहीं रहे।'

'क्यों?'

'ये लोग नीची जाति के थे—भङ्गी।'

'कैसे मालूम?'

'मैंने पहचान लिया है।'

— ११ —

डाकू सपाटे के साथ जङ्गल-जङ्गल होते हुये उड़नू टौरिया के पीछे से एक वृक्ष-समूह के निकट आकर ठहर गये। पहला काम जो उन्होंने किया, वह ढाटियों का उतारना था और दूसरा आग जलाकर तम्बाकू का पीना। ढाटियों के उतारने पर रनू, पूरन, लल्ली इत्यादि अपनी-अपनी चिलम पीने लगे। रमू के चेहरे पर विजय का उन्माद था। लल्ली अनमना चिन्तित था।

रमू ने कहा—'इतना जेवर इकट्ठा कर लिया है कि हमारी सरकार को अब चिन्ता न रहेगी।'

लल्ली ने अनमने स्वर में पूछा—'चाँदी के जेवर का क्या होगा? इसको सरकार के सामने पेश नहीं करना चाहिये।'

रमू ने तुरन्त उत्तर दिया—'उसको तुम ले लो। हमको बिलकुल उजर नहीं।'

लल्ली—'यह असम्भव है। हम लोग इसको नहीं ले सकते।

रमू—'आप हमारे अफ़सर हैं। आप ले सकते हैं।'

लल्ली—'मैं अकेला?'

रमू—'नहीं तो क्या? हम मिहतर लोग न तो उस पकवान को ग्रहण कर सकते थे और न इन जेवरों को छुएंगे। यदि सरकार को चाँदी का जेवर नज़र नहीं किया जा सकता है, तो किसी कुएं में फेंक दो।'

लल्ली—'कुएँ में फेंकने की अपेक्षा तो उसको बाँट लेना ही अच्छा है।'

रमू—'बट नहीं सकता, मैं पहले कह चुका हूँ।'

पूरन—'आप ले लो, माते! बच्चा की बात मान जाओ।'

लल्ली—'है, कैसा ? बब्बा की बात मान जाओ ! कैसे मान जाऊँ ? या तो चांदी का जेवर समान भाग से बटेगा या—या उसका जो-कुछ भी हो।'

रमू—'तब कुये मे डाल दो। केवल सोने का लेते चलो और जवाब वाली के हाथों भीतर भिजवा दो। अपने पास इन चीजों को एक क्षण भी नही रखना चाहिये। ये अपनी नही है—अपने मालिक की है।'

इस पर कुछ समय तक सब चुप रहे। तम्बाकू की दूसरी चिलम पी जाने लगी। लल्ली सबसे पहले बोला—'कुये मे नही फेकना चाहिये।'

रमू ने दृढता के साथ अपने प्रस्ताव को दुहराया—'तब आप ले लो।'

लल्ली ने कहा—'मै तो नही लूँगा··· ··।'

रमू इस 'तो' मे लल्ली की प्रथम अस्वीकृति की तरमीम का आभास पाकर बोला—'तो फिर क्या किया जावे ?'

लल्ली ने अपना निश्चय प्रकट किया—'सरकार को ही नजर करवाऊँगा। यदि उन्होंने लौटा दिया, तो फिर वैसा देखा जावेगा।'

रमू ने प्रश्न किया—'कहलवाओगे क्या ? असली बात जाहिर न होने पावे, नही तो मुसाहिबजू कटवा डालेगे।'

पूरन बीच मे बोल उठा— मैंने पहले ही कहा था।'

'चुप, चुप', रमू ने धीमे और गहरे स्वर मे जरा रोष के साथ कहा—'अभी तुझको बहुत-कुछ सीखना है।' फिर लल्ली से बोला—'माते, क्या कहलवाओगे आप ? जो-कुछ आप कहलवाओगे, वही बात, पूछे जाने पर, हम लोग भी कहेंगे। एकमत हो जाना चाहिये।'

इस बात को लल्ली और परन पहले ही सोच चुके थे। खरी करने के लिये ही चर्चा फिर से छिडी थी। लल्ली ने कहा—'चिरूला के पास महाराज दलपतसिह के समय का सैकडों बरसों से, गड़ा हुआ द्रव्य पड़ा है। उसमें से कुछ अकस्मात् हाथ लग गया है। उसी को नजर कर रहे है।

रमू—'और अभी बहुत-सा जमीन के भीतर चिरूला के आसपास कहीं पडा हुआ है। पता नहीं है।'

लल्ली—'मुसाहिबजू को इसलिये नजर नहीं किया कि वे आधे से अधिक तो योंही बाँट-बूँट देंगे, बाकी शीघ्र ही अनाप-शनाप मदों में खर्च हो जावेगा। और राजा को खबर लग जावेगी, तो पूरा-का-पूरा, नहीं तो अधिकांश सरकारी खजाने में जमा कर देना पडेगा।

रम—'सरकार इस बात को मान जावेगी और मुसाहिबजू से कुछ कहेगी भी नहीं।'

सलाह पक्की करने के उपरांत ही ये लोग दांतया की ओर चल दिये। भरतगढ दो-दो, चार-चार की टोलियों में पहुँच गये। हाजिरी का कोई कड़ा नियम था नहीं, इसलिये किसी का सन्देह जाग्रत नहीं हुआ। लल्ली ने चाँदी के जेवर अपनी कमर में बाँध लिये और सोने के सम्पूर्ण जेवर जवाब वाली के सिपुर्द कर दिये। जवाब वाली को 'चिरूला के पास गडा हुआ धन अचानक मिल जाने की बात' समझा दी और मुसाहिबजू पर प्रकट न होने देने के लिये आग्रह कर दिया—प्रकट होने पर कितने अनेक सकट सिर फोडने को खडे हो सकते है, यह अच्छी तरह बतलाने की चेष्टा कर दी।

जवाबवाली ने वे सब आभूषण चरखारीवाली सरकार को दे दिये और लल्ली की बात जितनी उसकी समझ में आई थी, उनके विचार में बिठला दी। चरखारी वाली को हर्ष हुआ।

वह उस हर्ष को छिपाने का प्रयत्न करने पर भी न दबा सकी। परन्तु उस हर्ष की तली में से एक प्रश्न मनमें कई बार उस रात उठा—'क्या यह सोना पर में रखने योग्य है?' इस प्रश्न की नोक को उन्होंने इस अनिवार्य सान्त्वना द्वारा झाड़ दिया—'भगवान ने घोर समय पर सहायता की है।'

रम के मनमें किसी प्रकार का अन्तर्विवाद खड़ा नहीं हुआ और न उसके साथी मिहनतों के मन में। लल्ली चाची के गहनों के उपयोग के विषय को लेकर प्रात काल तक बहुत इधर-उधर को सोचता रहा, सो न सका।

— १२ —

लुटे हुए लोगों में एक सुभद्रा भी थी। उसको ससुराल ने ब्याह था। कुछ व्यापारी गाडियाँ लेकर बड़ौनी जा ही रहे थे, यह सुनीना देखकर उसके पिता ने सुभद्रा को एक गाडी में बिठला दिया था। बडौनी पहुंचते ही पहला मुहल्ला वैश्यों का मिला। वहीं लगभग सब गाड़ियों को रुक जाना था। गाड़ियों के रुकते ही स्त्रियों ने करुण क्रन्दन प्रारम्भ किया। मुहल्ले के लोग इकट्ठे हो गये। 'क्या बात है, क्या हुआ ?' इत्यादि प्रश्न अनेक कण्ठों से एक साथ ही निकले। स्त्रियाँ गाड़ियों से उतरती जाती थी और रोती जाती थी। गाडीवान बैलों को चुपचाप खोल रहे थे। व्यापारी अपना-अपना सामान गाड़ियों में से उतारते चले जा रहे थे, परन्तु उत्तर कोई नहीं दे रहा था। मुहल्ले वाले चकित और जिज्ञासाविह्वल थे।

एक गाड़ीवान ने स्त्रियों के प्रति प्रश्न किया—'पकवान की गठरियों का क्या होगा ?'

'कुत्तों को डाल दो।'—सुभद्रा ने सिसकते-सिसकते, धीरे से उत्तर दिया।

गाड़ीवान ने कहा—'बैलों को खिलाये देते है।'

मुहल्ले वाले और भी हैरान हुये। व्यापारी अपनी गठरी-पुटरी इकट्ठी करके एक जगह खडे हो गये, घरों में नहीं घुसे। मुहल्ले वाले ने व्यापारियों के बिलकुल पास आकर धीरे से पूछा—'बात तो बतलाओ।'

'क्या बतलावें', एक व्यापारी ने कहा—'लुट गये।' और उसका गला भर आया।

मुहल्ले वाला घबराहट के साथ बोला—'डाका पड़ गया है? गाँव के इतने समीप ! कोई मारा तो नहीं गया ?'

'मारा तो कोई नहीं गया, पर ले सब गये।'

'कहाँ पर पड़ा ?'

'रामसागर के नाले पर।'

'इतने निकट ! कौन लोग थे, पहचाना ?'

'हाँ, सुभद्रा ने पहचान लिया। दतिया के थे।'

'कौन थे ? कौन थे ?'

'यहाँ नहीं बतला सकते। घर में चलकर बतलावेंगे।'

गाड़ीवान ने पकवान खोल-खोलकर बैलों के सामने डालने शुरू कर दिये। उक्त व्यापारी ने मुहल्ले वालों से अनुरोध किया— हमें छुओ मत। नहा लें, तब घरों में घुसेंगे।

मुहल्ले वालों ने पूछा—'क्यों ?'

व्यापारी ने रुखाई के साथ, परन्तु मन्द स्वर में उत्तर दिया—'कह दिया कि सब बात भीतर चलकर कहेंगे, धीरज तो धरो।'

पानी मँगवाकर सभी स्त्री-पुरुष और गाड़ीवानों ने स्नान किया। रेशम के कपड़ों पर जल के केवल थोड़े-से छींटे डाल दिये, बाकी सब कपड़े धोये। मुहल्ले वालों की कल्पना को सन्देह करने में विलम्ब नहीं लगा—हो-न-हो मिहतरों ने डाका डाला है, और मिहतर किसी सरदार के सिपाही हैं।

सुभद्रा की ससुराल वाले घर में सब लोग एकत्र हुये। बैलों को बेड़ों में बाँधकर गाड़ीवान भी आगये। चिलम के साथ-साथ पूछ-ताछ और बात-चीत चल पड़ी।

'यह कैसे निश्चय हुआ कि मुसाहिब दलीपसिंहजू के ही वे सब मिहतर थे ?'

'सम्भव है, किसी और सरदार के भी मिहतर डाके में शामिल हुये हों, परन्तु मुसाहिबजू के जरूर थे और उनका दायाँ हाथ लल्ली लोधी भी था।'

'गले के स्वर से ही दतिया वाली बहू ने पहचाना। और कोई प्रमाण तो है नहीं?'

'जब कोई प्रमाण लेने वाला दिखलाई पड़ेगा, तब प्रमाण भी दे देंगे।'

'वैसे आपस में तो सब बातें तय कर ही लेनी चाहिये।'

'दतिया वाली बहू इन सबको जानती है। उसने पहचान लिया। जब एक डाकू ने पकवान के सम्बन्ध में कहा कि किसी ने छुआछूत नहीं की है, अपने पकवान लिये जाओ, तब हम भी लल्ली का स्वर पहचान गये। दतिया वाली के मुँह से तो यकायक 'ए' निकल पड़ी थी और वह नाम भी लेने वाली थी, परन्तु अन्य स्त्रियों ने मना कर दिया, नहीं तो वह नाम ले-लेकर उन सबों को बातें सुनाती। हमारे ही कर्जे पर तो ये सरदार और सिपाही पलते हैं और हमारी ही जड़ खोदना चाहते हैं।'

'जब अटक पड़ती है, तो 'सेठजी' और 'साहजू' और जब अटक निकल जाती है, तब बनिया-बक्काल!'

'हमारी भी भगवान कभी सुनेंगे।' मुहल्ले वाले सहानुभूति-पीड़ित थे। एक बोला—'इन अत्याचारियों के कुचलने वाले भी राम ने उत्पन्न कर दिए हैं। इनका एक दिन ऐसा हाल होना है कि मार खाते जावेंगे और चीं तक नहीं कर पावेंगे।'

'अभी तो वे लोग और वे दिन दूर हैं।'

'नहीं तो, अङ्गरेजों से जो लिखा-पढ़ी रियासतों की हुई है, उससे साफ-साफ लिखा है कि लूट मार बन्द कर दी जावे।'

'खैर, अब क्या करना चाहिये, सो बतलाओ। जागीरदार साहब के पास चलें। डाका उन्हीं की हद में पड़ा है।'

'देखो, ऐसा न होवे कि उल्टी आंते गले पड़े। ठाकुर ठाकुर सब एक हैं और मुसाहिबजू चरखारी वालों के दामाद हैं, राजा के भाई बन्द।'

'परन्तु हमारे जागीरदार हम लोगों के लिये कट मरेंगे।'

'आशा तो ऐसी ही है। इनके पुरखे दीवान जू हम लोगों के लिये जूझ पड़े थे। अब भी उन्हीं के वंशजों का सहारा है। नहीं तो हमने तो मऊ चले जाने का निश्चय कर लिया है। वहां नाते-दारी है। झांसी के मराठों का राज्य है। इतना अन्धेर नहीं है।'

अन्त में व्यापारी-समुदाय ने बड़ौनी के जागीरदार के सामने अपनी फरयाद का पेश करना तय किया, और वे सब-के-सब उसी समय उनकी गढ़ी में पहुंचे। मुजरा करने के बाद व्यापारियों ने रो-रो कर अपनी व्यथा जागीरदार को सुनाई और अपना सन्देह भी प्रकट किया।

जागीरदार मसनद से टिके हुये देर तक हुक्का पीते रहे। बहुत शान्त और धीमे स्वर में बोले—'बहुत बुरा हुआ। कल राजा के पास समाचार पहुँचना चाहिये।'

व्यापारियों के मुखिया ने विनय की 'महाराज हमारी पहुँच तो महलों तक नहीं हो सकती। हमको तो दरवाजे पर ही दुत्कार दिया जावेगा।'

जागीरदार ने दृढ़ता के साथ कहा—'हमारी पाती लेते जाओ। पाती राजा के दीवान के हाथ में देना।'

मुखिया हाथ जोड़कर बोला—'दीवान साहब पाती मुसाहिबजू के पास पहुंचा देंगे और फिर हमारी और भी खराबी होगी।'

जागीरदार मूंछों पर हाथ फेर कर कुछ सोचने लगे।

मुखिया ने सोचा कि जागीरदार साहब की पाती भी हाथ से खिसकी। बोला, 'महाराज जैसी मर्जी हो। मैंने विनती इसलिये की कि मुसाहिबजूको अपने मिहतर इतने प्यारे हैं कि वे कोई न्याय नहीं करेंगे। हां, राजा के हाथ में पाती पहुँच जाय तो कुछ हो जावेगा, नहीं तो हमको हुकुम मिल जावे, तो हम लोग अपनी बंजी-भौंरी और कहीं कर खायेंगे।' यह कहकर मुखिया ढार मारकर रोने लगा।

जागीरदार को डाके की फरियाद पर इतना क्षोभ नहीं हुआ जितना व्यापारियों के बार-बार रो पड़ने पर। वह डाट-डपट कर उन लोगों को चुप करना चाहते थे, परन्तु उनके संयम ने क्षोभ को दूसरा मार्ग पकड़ा दिया। कहने लगे-'मुझको तुम्हारा औरतों की तरह रोना अच्छा नहीं लगता। इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारे साथ बड़ी ज्यादती हुई है और हम लोगों का बड़ा अपमान हुआ है, परन्तु हम लोग अभी जीवित हैं। हम तुम्हारे लिये राजा से भी टक्कर लेने को तैयार हैं। हमारे जङ्गल, चुङ्गी-चबूतरे न्यायालय सब राजा से अलग हैं। इसलिये हमारी पाती राजा के ही पास ले जाओ और कल ले जाओ। ऐसा मत सोचो कि तुम्हारी पीठ पर कोई नहीं है। बड़ौनी में रहो और सुख शान्ति के साथ रहो। कभी हमारे सामने बड़ौनी छोड़ने की बात मत करना।'

व्यापारी लोग जागीरदार के पास से चले आये। दूसरे ही दिन उनको जागीरदार की पाती मिल गई। परन्तु राजा के पास यह पाती दो-तीन दिनों के बाद पहुँची। पाती पहुचाने के लिये व्यापारियों को काफी परिश्रम, चातुर्य और पैसा भी खर्च करना पड़ा। पाती में केवल डाके का वृतान्त था। मुसाहिबजू के सिपाहियों पर उसमें कोई सन्देह प्रकट नहीं किया गया था, परन्तु यह स्पष्ट तौर पर लिखा गया था कि दतिया के किसी सरदार के मिहतर सिपाहियों ने डाका डाला है।

राजा को मुसाहिबजू के मनचले सिपाहियों और मुसाहिबजू की निर्धनता का हाल मालूम था इसलिये उनको सन्देह करने में विलम्ब नहीं हुआ। परन्तु उन्होंने बात मन में रखली। व्यापारियों को उत्तर दिया गया—'घबराओ मत, जाच-पड़ताल की जावेगी और न्याय होगा।'

— १३ —

डाका पड़ने के तीसरेदिन मुसाहिब दलीपसिंहने परिचारिका द्वारा अपने आने का समाचार भीतर भेजा। चरखारी वाली सरकार ने अभ्यास-क्रमानुगत अभिनन्दन के उपरान्त लल्ली के हाथ से आये हुये सब जेवर उनके सामने रख दिये। उस समय तक उन्होंने जेवरों का निरीक्षण नहीं किया था। उन जेवरों में वे जड़ाऊ पहुँचियां भी थीं, जिनको लल्ली ५००) में कुल्ली के यहां कुछ ही दिन पहले गिरवी रख आया था।

पहुंचियों पर दृष्टि पड़ते ही चरखारी वाली सरकार का हर्ष और उत्साह चिन्ता और खेद में पलट गया तथा मुसाहिबजू का कुतूहल परिताप में, क्योंकि दोनों को एक ही प्रकार के निश्शंक सन्देह पर पहुँचने में एक क्षण से अधिक नहीं लगा। डाका पड़ने की खबर चरखारी वाली सरकार को उनकी परिचारिकाओं ने घटे-बढ़े रूप में दूसरे ही दिन दी थी। मुसाहिबजू के कानों में भनक पड़ गई थी। परन्तु जिस निष्कर्ष पर वे दोनों सहज ही पहुंचे थे, कहना उन में से कोई भी नहीं चाहता था।

चरखारी वाली ने सबसे पहले मुँह खोला। बोलीं—'लल्ली माते कहते थे कि चिरूला के पास यह सब माल मिला है।,

आत्म-विस्मृति का आश्रय लेकर मुसाहिब ने भी कहा—'चिरूला के पास महाज दलपतसिंह के समय का बहुत खज़ाना गड़ा है। वे नर्मदा पार दक्षिण से बहुत-सा द्रव्य ले आये थे। बड़े वीर थे। मुग़लों की सेना के नायक थे। गोलकुण्डा, बीजापुर आदि की विजय उन्हीं के प्रताप से हुई थी। उनकी सेना में बहुत सिपाही और सरदार रहते थे। उनका अधिकांश समय दतियों के बाहर ही बीता था। मुगलों के साथ रहते हुए भी वे कभी उनकी छावनी के भीतर अपनी छावनी नहीं रखते थे।'

चरखारी वाली सरकार ने कर्तव्यवश जेवर मुसाहिबजू के सामने पेश कर दिये थे, परन्तु वे भी उनके विषय में बहुत कम चर्चा करना चाहती थीं, इसलिये मुसाहिबजू के ही प्रसङ्ग को जारी रखने के उद्देश्य से बोलीं—'बड़ौनी वाले इस राज्य के जागीरदार होते हुये भी अलग-अलग विलग-से ही रहते है।'

मुसाहिब—'हाँ, उनकी चुङ्गी, डाग, आबकारी, अदालत सब न्यारी है। वे लोग दशहरे तक के दरबार में आने-से आनाकानी करते है।'

चरखारी वाली—'वैसे उनके हाथ में कुछ अधिक फ़ौज-फाटा तो है नहीं।'

मुसाहिब—'परन्तु वे लोग कलेजे के पक्के है। अड़ जात है। इधर राजा भैयाबन्दी की बात सोचकर उनका नाश करने से डरते है। दूसरे, समय भी अब नाजुक आ गया है। ग्वालियर के सिन्धिया और मालवे के अङ्गरेज़—इनका भी तो ख्याल रखना पड़ता है। जहाँ तक बने, राज्य के सरदारों को हाथ में रखने की ज़रूरत है।'

चरखारी वाली का ध्यान फिर जेवरों की ओर गया। चिरूला के पास के गड़े हुये खज़ाने के साथ विश्वसनीय सम्बन्ध स्थापित करने के मोह से बोली—'क्या इस खज़ाने का पता राजा को नहीं है?'

मुसाहिब ने उत्तर दिया—'खज़ाना एक ही जगह गड़ा नहीं है। ऐसा मत है कि वह चिरूला के एर-फेर में अनेक स्थानों में दबा हुआ है। कोई देवता उसकी रक्षा करते है। भाग्य से ही कभी किसी को मिल जाता है। राजा ने कई बार खुदाई करवाई। परन्तु कभी कुछ हाथ नहीं लगा।'

चरखारी वाली ने दृढ़तापूर्वक कहा—'तब यह भाग्य से ही लोगों को प्राप्त हुआ है। इसमें राजा का कोई भाग नहीं।'

मुसाहिब बिचकते हुये मन को पक्का करके बोले—'राजा के भाग्य का होता, तो उनको कभी का मिल गया होता।' परन्तु चिरूला के दफ़ीने और राजा के भाग्य की सम्बन्ध-भिन्नता की बात कहते हुये भी उनका ध्यान फिर बरबस पहुंचियों के वास्तविक इतिहास की ओर खिचा। मुसाहिब ने कहा—'रमू इत्यादि इतना खज़ाना चिरूला से ले आये और मुझसे ज़िक्र तक नहीं किया!'

चरखारी वाली उस चर्चा को दूसरी ओर मोड़ देना चाहती थी; परन्तु विवश हो गई। पहुँचियाँ उनको भी खटक रही थी। प्रयत्न करने पर भी उन्होंने उसी चर्चा को विकसित किया। बोली—'साधारण-सी बात समझ कर आपसे नहीं कहा होगा। मेरे पास यह सब उन्होंने उसी दिन भेज दिया, जिस दिन शिकार खेलते-खेलते उनको मिला।'

मुसाहिब—'रमू या लल्ली किसी ने पहले कभी ऐसा नहीं किया था।'

चरखारी वाली—'परन्तु वे लोग हैं पक्के स्वामिधर्मी।'

मुसाहिब—'इसीलिये मन को और भी कष्ट हो रहा है।'

चरखारी वाली—'उन लोगों ने जितना उखाड़ा, सब यहाँ भेज दिया। अपने लिये एक सीत भी नहीं रखा।'

मुसाहिब—'राजा सुनेंगे, तो बहुत झंझट बढ़ेगा।'

चरखारी वाली—'हमारे चाकर कबूल नहीं करेंगे, फिर राजा क्या करेंगे? और फिर आपके मनको बिगाड़ने की राजा हिम्मत नहीं करेंगे।'

मुसाहिब—'यह सब ठीक है; पर जो कुछ इन लोगों ने किया, वह बहुत बुरा किया।'

चरखारी वाली—'अपने लिये कुछ नहीं किया।'

मुसाहिब—'तभी मुझसे कुछ नहीं कहा। क्या आपसे पूछ कर इन लोगो ने यह खजाना ढूँढ़ा ?'

चरखारी वाली—'मेरी अनुमति से बाहर क्या कोई भी काम होता है ?'

मुसाहिब झेप गये। पान मँगवाने के लिये कहा। परिचारिका पान लगाकर रख गई। तब तक पति-पत्नी बार-बार जेवरो पर से आँख उचटा-उचटा कर इधर-उधर देखते रहे। पान चबाते-चबाते मुसाहिब ने कहा—'इसी प्रकार की पहुँचियाँ आपकी भी थी।'

'हाँ', चरखारी वाली सरकार बात मिलाने की चेष्टा करती हुई बोली—'आकार-प्रकार मे बहुत से गहने अकस्मात् मिल जाते है।'

मुसाहिब ने जरा ग्लानि के साथ कहा—'परन्तु आपकी पहुँचियाँ तो घर मे है नही।'

चरखारी वाली—'नहीं हैं, और ये उनसे मिलती-जुलती हैं, परन्तु ये और वे एक ही नही हो सकती।'

मुसाहिब—'आशा तो यही करनी चाहिये, लेकिन ·।'

चरखारी वाली—'क्या ?'

मुसाहिब—'लेकिन यदि यह सब चिरूला के जङ्गल मे गड़े हुए दफीने मे से नही आया है तो बड़ौनी के निकट डाले हुए डाके की सम्पत्ति है।'

चरखारी वाली—'निश्चय ही हमारे आदमी ऐसा भीषण काम नही कर सकते है।'

मुसाहिब—'मेरा भी विश्वास है कि हमारे सिपाहियों ने डाका नही डाला, यह माल उनको मिला चाहे जिस प्रकार हो। चाहे उन्होने डाकुओं से लड़-लड़ाकर छीना हो।'

चरखारी वाली—'यह भी बिलकुल सम्भव है।'

— १४ —

१०–१२ दिन बीत गये, परन्तु राजा ने कोतवाल को कोई आज्ञा नहीं दी। दीवान से भी कुछ नहीं कहा। कोतवाल, राज्य में पुलिस का सबसे बड़ा हाकिम था। वह न्यायाधीश भी था। एक अमीन भी रहता था। जिन मामलों पर राजा विचार करवाना चाहते, उनका निर्णय अमीन करता था। अमीन के हाथ मे दीवान के नीचे माल-विभाग भी था, पर राज्य-कर वसूल करने मे कोतवाल सहायक था, और इस अवस्था मे वह माल, फौजदारी और पुलिस का शासक हो जाता था। कोतवाल केवल दीवानी मामलो मे दखल नही देता था। यह विभाग अमीन के अधिकार क्षेत्र मे था, और ये सब दीवान के अधीन थे। परन्तु जहाँ किसी सरदार या प्रभावशाली व्यक्ति के दोष पर विचार करने का प्रश्न उत्पन्न होता, वहाँ राजा के अधिकार-वृत्त की बात आ जाती थी और फिर कोतवाल, अमीन, दीवान कोई कुछ नही कर सकते थे। इन तीनो अधिकारियो के वृत्त साफ़ तौर पर बँटे हुए हो, ऐसा नही था। कभी-कभी तो सड़ी-से-सड़ी बात मे भी राजा दखल दे बैठते थे और कभी-कभी अपने अधिकार-वृत्त के प्रसंग की भी अवहेलना कर डालते थे।

१०–१२ दिन तक राजा के कुछ भी न करने के कारण दतिया का व्यापारी वर्ग जल उठा। जलन मन-की-मन ही में नही रही. किन्तु वार्तालाप और चर्चा के रूप मे कही-कही फूट भी निकली। दीवान के कान मे बात पड़ी, कोतवाल ने भी सुनी और अमीन को भी मालूम हो गया। सयाने लोग संकेत मे और निडर गैर ज़िम्मेदार लोग खुलकर मुसाहिबजू और उनके मिहतर सिपाहियो पर अभियोग लगाने लगे। पर यह सब

गलियो और घरो की पौरो मे ही होता था। चौराहो तक बात नहीं आई थी।

कुल्ली को डाके का सब समाचार दूसरे ही दिन मिल गया था। वह बड़ौनी गया और ब्याह मे शामिल हुआ। सुभद्रा मिली और उसने सब चिट्ठा सुनाया। जब वह लौटकर आया, तो उसने भी कोतवाल, अमीन, दीवान सबको अपनी फरियाद सुनाई। परन्तु 'हाँ, हूं' के सिवा किसी ने कुछ सहायता नही की। सुभद्रा भी ससुराल से लौट आई। वह जब कुल्ली को बड़ौनी मे मिली थी, तब रोई और दतिया आई, तब भी रोई।

लल्ली के वर्ग मे भी डाके की खबर फैल गई। मुसाहिबजू के अन्य सैनिक इस बात के अनुसन्धान का प्रयत्न करने लगे कि हमारे बेड़े के कौन-कौन लोग उसमे शरीक हुए थे, परन्तु मिहतरो ने पक्की गाँठ बाँध रखी थी, इसलिये ठीक पता नही लग सका।

लल्ली चाँदी के जेवर सयत्न रखे हुए किसी धुन मे सुभद्रा के मकान के पास से कभी-कभी निकल जाता था। एक दिन अवसर पाकर लल्ली सुभद्रा के पास गया। वह अकेली थी। बोला—'आज अनमनी कैसी हो ?'

सुभद्रा की आँखें एकदम घूम गईं, परन्तु एक पल के खण्ड में ही उसने अपने को सँभालते हुए उत्तर दिया—'आजकल गरमी बहुत पड़ रही है। जी बहुत स्वस्थ नही रहता।' और वह मुस्कराई।

उस मुस्कराहट में किसी गूढ़ सङ्केत को लक्ष्य करके लल्ली ने कहा—'इधर बहुत दिनो से तुम्हारी खोज मे था। आज मुश्किल से अवसर मिल पाया है।'

सुभद्रा के नेत्रों मे थोड़ी-सी कर्कशता, गले मे संयम और होठों पर हँसी थी। बोली—'तुम्हें मालूम तो था कि मैं बड़ौनी गई थी। ब्याह की बिदाइयाँ होते ही लौट आई।'

लल्ली के भीतर एक उमंग थी। उसी प्रेरणा से उसने कहा—'पहले नहीं मालूम था। हाल में सुना कि तुम बड़ौनी ब्याह में गई हो।'

सुभद्रा ने आँखों की कर्कशता को भी वश में कर लिया। गले में संयम ने थोड़ा-सा मिठास उत्पन्न किया और होठों पर हँसी और भी विस्फीत हुई। बोली—'काहे के लिये ढूँढ़ रहे थे? कैसे छुट्टी मिल गई?'

लल्ली को उमंग में उतावलापन आ गया। बोला—'हम और तुम पहले किस तरह और कितने अधिक मिलते रहते थे, इसको कैसे भूल सकता हू? मै गरीब सिपाही हूं। तुम साहूकार की लडकी हो। तुम्हारी ओर से रुखाई देखकर ही मैं ज़रा हिचकने लगा था।'

'और अब देखकर मन बढ़ने लगा?'—सुभद्रा ने संयत मधुरता के साथ प्रश्न किया।

लल्ली ने और भी उमङ्ग के साथ उत्तर दिया—'मन पीछे तो कभी नहीं रहा। तुम्हारी रुखाई कभी-कभी दबका देती थी और इधर काम भी बहुत लगे रहे।'

सुभद्रा की आँखों में फिर एक क्षण के लिये कठोरता आई और कण्ठ में कुछ जा अटका, किन्तु उसने तुरन्त फिर मुस्करा कर कहा—'मैं तो वैसी ही हू, लेकिन तुम्हीं बदल गये हो।'

लल्ली ने प्रमत्त स्वर में पूछा—'कैसे।'

सुभद्रा ने स्वर की मादकता को परख लिया। बोली—'अपने भीतर वाले से पूछो।'

'वह तो तुम्हारे पास है।' लल्ली ने और भी प्रसन्न होकर कहा और कमर की फेंट खोलकर चाँदी के पैजने और कुछ आभूषण उसके सामने रख दिये और इधर-उधर देखने लगा।

सुभद्रा को उन आभूषणो मे से अधिकांश को पहचानने मे देर नहीं लगी। संयम करने पर भी आँखो मे कर्कशता, होठों पर सिकुड़न और कण्ठ मे रुखाई आ गई। बोली—'उस दिन जब हम लोगो को लूटा, तब भीतर वाला कहाँ था ?'

लल्ली का सारा शरीर सन्न हो गया। आँखो से तिलमिली छूट गई और सिर के बालो से पसीना। कुछ कहना चाहता था, घिग्घी बँध गई।

सुभद्रा ने सरोष कहा—'मैने तुम्हारा और रमू का स्वर चीन्ह लिया था। चाहती तो उसी दिन पकड़वा देती, परन्तु न जाने क्यो रुक गई। तुम बड़े नीच हो।'

'नीच तो नही हूं', लल्ली ने नीचा सिर किये हुए कहा—'मैने कुछ नही किया।'

'सब अपराधी इसी प्रकार का जवाब दिया करते है।' सुभद्रा तड़क कर बोली—'तुमको मेरे पास आने मे शरम भी न आई !'

लल्ली ने सिर जरा ऊँचा किया, कहा—'तुम चाहे जो कुछ कहो, मैने तुम्हारे साथ कोई बुरा बर्ताव नही किया। मै तुमको जितना चाहता हूं, भगवान जानते है।'

सुभद्रा का क्रोध कण्ठ मे समा गया। भर्राये हुए गले से बोली—'भगवान को क्यो लूट-खसोट मे घसीटते हो ?' फिर तीक्ष्ण व्यंग की मुस्कराहट के साथ कहती गई—'सब जेवर उतार कर रख दो। अभी तक भलमनसाहत से काम लिया, अब जैसा करते हैं, उसके लिये रोने वाले भी न मिलेंगे।' 'शरीर मत छुओ, परन्तु प्राण ले लो।' 'भीतर वाला तो तुम्हारे पास है !' 'तुमको जितना चाहता हूं, भगवान जानते है।' 'मारो, लूटो और पत्थरो से कूटो।'

लल्ली ने और सिर उठाकर कहा—'जो-कुछ भी हुआ हो उसका मुझको बहुत रञ्ज है। परन्तु मैने अपने लिये कभी कुछ नहीं किया।'

'मेरे लिये ?'—कठोरता के साथ सुभद्रा ने प्रश्न किया—'पहुंचियाँ किसको दे आये ? रुपये लेकर आना और मेरे पिता से कहना कि पहुंचियाँ लाओ। मेरे ही पैजने मुझको देने आये हो। यदि राजा न्याय नही करेंगे, तो ईश्वर के यहां न्याय होगा।'

लल्ली की आंखों से आंसू बहने लगे।

सुभद्रा ने और भी रुखाई के साथ कहा—'तुम जैसे झूठे और अधर्मी हो, वह मुझको हाल मे मालूम हुआ।'

लल्ली साहस के साथ बोला—'मै न झूठा हूं और न अधर्मी। मैने एक पैसा भी नही छुआ।'

सुभद्रा ने कहा—'जिनके ऊपर तुमने डाका डाला, वे लोग गहने कहीं से चुराकर लाये थे ?'

लल्ली को कुछ और साहस हुआ। बोला—'यदि मै जानता कि किसके ऊपर क्या होने वाला है, तो यह सब कभी न हो पाता। माफ़ी चाहता हू।'

इसके आगे लल्ली कुछ न कह सका। सिसक-सिसक कर रोने लगा। सुभद्रा का क्षोभ कम नहीं हुआ। उसने कहा—'यह सब उठा ले जाओ और जिसको पहुँचिया दे आये हो, उसी को यह भी दे आओ।'

लल्ली धीमे स्वर मे बोला—'पहुचिया वापस ले आ सकता हूं।'

'किसको दे आये हो ?'—सुभद्रा ने प्रश्न किया।

'यह मत पूछो। हाथ जोड़ता हूं।' लल्ली ने विनय की।

सुभद्रा ने उसी रुखाई के साथ कहा—'तुम यहा से जाओ। मेरे पिता आने वाले होगे। अभी पकड़े जाओगे।'

लल्ली मूढ़ हो गया। घुटनों पर सिर रखकर आये-गये विचारों में तल्लीन। सुभद्रा झाड़ू लेकर आंगन बुहारने लगी। थोड़े समय के पश्चात् बोली–'अब किसके लिये रो रहे हो? अकेले मत रोओ। जिसको पहुँचियां दे आये हो, उसके साथ रोओ।'

लल्ली ने घुटनों से सिर ऊँचा उठाया। सुभद्रा की ओर एक क्षण देखा। फिर उसकी दृष्टि गहनों पर गई, फिर द्वार की ओर। सामने से कुल्ली आता दिखलाई पड़ा। लल्ली ने गहने बांधकर चले जाने का निश्चय किया। वह गहनों की ओर हाथ बढ़ाना ही चाहता था कि कुल्ली भीतर आ गया। सुभद्रा अकचका गई। परिस्थिति को अपने बूते से बाहर समझकर उसने ज़रा कातर दृष्टि से लल्ली की ओर देखा।

कुल्ली ने आते ही पहले गहनों पर आँख डाली। आश्चर्य के साथ उसने लल्ली से पूछा—'यह कौन सा गहना है? कहाँ से लाये हो? काहे के लिये लाये हो?' लल्ली के उत्तर देने के पहले ही कुल्ली ने फिर कहा—'यह गहने तो पहचाने हुये है।'

लल्ली साहस बटोर कर दृढ़ता के साथ बोला—'मैं गिरवी रखने के लिये ये सब गहने लाया हूँ।'

सुभद्रा ने ज़रा चैन की सांस ली।

कुल्ली ने कहा—'मेरे पहचानने में शायद कुछ ग़लती हुई हो। बेटी, तुम पहचान सकती हो?'

लल्ली ने सुभद्रा की ओर देखा। सुभद्रा के मुँह से यकायक 'हां' निकल गई।

'किसके है?' कुल्ली ने प्रश्न किया।

'मेरे।' सुभद्रा ने सहज उत्तर दिया।

कुल्ली ने लल्ली से बनावटी मिठास के साथ पूछा—'भाते, तुम्हारे पास ये जेवर कैसे पहुंचे? किसके लिये रुपया उधार लेने आये हो?'

'अपने लिये।' लल्ली ने बिना हिचकिचाहट के उत्तर दिया—'मुझे रुपये की अटक है। अपने लिये रुपया उधार लेने आया हूं। जेवर मेरे है। सुभद्रा से बड़ी देर से कह रहा हूँ। इन्होंने कहा कि तुम आ जाओ, तब गिरवी रखने की बात हो सकेगी।

'इसने यह नहीं कहा कि जेवर मेरे हैं?' कुल्ली ने रुखाई के साथ पूछा।

लल्ली ने उत्तर दिया—'कहा था। मुझसे ये रुष्ट भी हुईं। इसीलिये अब तक तुम्हारी बाट देखता बैठा रहा।'

'बेटी' कुल्ली ने करारे स्वर में सुभद्रा से कहा—'तुमने डाकुओं को पहचान लिया था, क्या उनमे माते नहीं थे?'

'नहीं थे', सुभद्रा ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया—'मेरा सन्देह-मात्र था। रमू अवश्य था, सो मैंने उसी समय बतला दिया था।

परन्तु', कुल्ली ने कहा—'तुमने यह भी तो कहा था कि मिहतरों के अलावा मुसाहिबजू के और सिपाही भी थे।'

सुभद्रा बोली—'हां, कहा था, पर यह नहीं कहा था कि उनमे माते थे।'

कुल्ली कुछ सोचने लगा। लल्ली उँगली के नाखून से धरती कुरेदने लगा। सुभद्रा झाड़ू देने लगी।

कुल्ली ने कहा—'जो-कुछ भी हो, ये जेवर तुम्हारे नहीं हैं, मेरी लड़की के है। हो सकता है, तुम डाकुओं के साथ मे न रहे हो, परन्तु माल तुमने डाकुओं से पाया है। राजा के सामने चलना होगा।'

सुभद्रा भीतर चली गई।

लल्ली बोला—'चाहे जहां चले चलो। जेवर मेरे हैं। क्या जेवरों पर तुम्हारा नाम पड़ा है? जेवर एक-से नहीं हो सकते?

कुञ्जी ने मुस्कराकर पूछा—'तुम्हारे पास कहां से आये ? किस सुनार से बनवाया था ?'

लल्ली चलने को हुआ। बोला—'जब राजा पूछेंगे, तो बतला दूँगा।'

कुंजी ने साहस के साथ कहा—'यहां से ले जाने न पाओगे। यह न समझना कि मैं कोरा बानियाँ हूँ।'

'रखे रहो', लल्ली ने जाते-जाते कहा—'मेरे भाग्य के होंगे, तो मुझको मिल जायेंगे।' और वह चला गया।

लल्ली के चले जाने पर कुञ्जी ने सुभद्रा को बुलाया। सुभद्रा बुलाने का कारण समझ गई। कुञ्जी ने क्षुब्ध स्वर में पूछा—'उस दिन तुमने बिना सन्देह के कहा था कि लल्ली डाकुओं में था, आज क्या उससे डर गईं ? संसार मे यही अकेला राज्य नहीं है, झांसी चले जायेंगे। ग्वालियर और इन्दौर हैं। मालवे में अंग्रेज़ हैं। अब असह्य हो गया है।'

सुभद्रा ने कहा—'मैंने लल्ली से भी कह दिया कि तुम डाकुओं में थे, पर उसने गङ्गा जी की सौगन्ध खाई, इसलिये मुझको विश्वास हो गया।'

कुञ्जी ने आश्चर्य प्रकट किया—'यदि रमू और उसके सारे मिहतर गङ्गा जी की क़सम खा लें, तो क्या उनका भी विश्वास कर लोगी ?'

'नहीं करूँगी', सुभद्रा ने उत्तर दिया—'लल्ली की और बात है। वह बड़ी जात का है।'

'और ये जेवर ?'—कुञ्जी ने फिर प्रश्न किया।

'ये मेरे हैं, मेरे-जैसे ही हैं—जी में निश्चय होता है कि ये मेरे ही हैं।' सुभद्रा ने उत्तर दिया।

कुञ्जी ने कुछ सोचकर कहा—'सम्भव है, लल्ली डाकुओं के साथ न गया हो और मिहतरों ने परस्पर गहने बांटकर कुछ

इसको दे दिये हों। जो-कुछ भी हो, ये पैजने निश्चय ही तुम्हारे हैं। इनको दतिया में ही सुनार से ढलवाया था। उसका निशान पड़ा है। मैं चीन्हता हूँ। सुनार अभी जीवित है। वह हजार गहनों में अपना बनाया हुआ गहना पहचान लेगा।'

कुब्जी ने पैजनों को उलट-पलटकर उक्त निशान को पहचान लिया। अब सुभद्रा को सन्देह करने के लिये कोई कारण न रहा।

कुब्जी के मनमे तो कोई कारण था ही नहीं। उसको अपनी लड़की की स्मृति और लल्ली की सौगन्ध पर सन्देह होने लगा। वह उन गहनो को बांधकर दीवान के पास गया। दीवान ने कोतवाल को बुलाया। दोनो कुब्जी के साथ राजा के पास पहुँचे। साथ मे कुब्जी ने नगर के और सेठ भी ले लिये। इनमे जिनपर डाका पड़ा था, वे भी थे और जिनपर नहीं पड़ा था, वे भी।

सेठो की फ़रियाद पर राजा ने न्याय का आश्वासन दिया। व्यापारियों मे दो-तीन लखपती भी थे। राजा के यहां उनका मान था। उन्होंने हिम्मत करके मुसाहिब के मिहतरों को अपराधी ठहराया। राजा दीवान की ओर देखकर बोले—'हमारे ही सिपाही हमारे आदमियो को सतावें!'

दीवान—'अन्नदाता, इसकी छानबीन की जावेगी।'

राजा—'मुसाहिबजू का नौकर डाके के गहने गिरवी रखने आया। अब और छानबीन क्या होगी?'

दीवान—'महाराज, यह प्रमाणित होना चाहिये कि वे सेवर डाकै के हैं।'

दीवान जानता था कि मुसाहिबजू चरखारी के राजा के दामाद हैं और राजा के दरबार तथा मनमें उनके पद का महत्व है। परन्तु राजा को अपने भाई-बन्दों से बढ़कर अपने राज्य की भी चिन्ता थी। इसलिये जरा क्रुद्ध स्वर में बोले—'इस घटना को हुए काफ़ी समय हो गया। अभी तक कुछ नहीं किया गया।'

दीवान के लिये यह परिस्थिति असाधारण न थी। उसने विनय की—'हुजूर, जाँच-पड़ताल में उलझनें पड़ती ही हैं। अब बिलम्ब न होगा। कोतवाल साहब अपराधियों को दण्डित करवावेंगे।' दीवान ने कोतवाल की ओर देखा।

कोतवाल ने कहा—'मुझको जैसी आज्ञा हो।'

व्यापारियों ने अपनी विनीत आँखें राजा की ओर फेरीं। राजा ने कोतवाल को डाटा—'मूर्ख, मेरे पास तक इस ज़रा-से मामले के लाने की क्या जरूरत थी? जिसने अपराध किया हो, उसको पकड़ो और दण्ड दो।'

कोतवाल खीझ गया। मन मसोसकर बोला—'गरीबपरवर इन सेठों ने मुझ से कभी नहीं कहा कि मुसाहिबजू के सिपाहियों ने यह वारदात की है, नहीं तो ···' इसके आगे कुछ न कहकर कोतवाल खांसकर चुप हो गया।

राजा का क्रोध गरम हुआ। कहने लगे—'मुसाहिबजू यहां के राजा नहीं हैं। मैं राजा हूं। कल बनियों पर डाका पड़ा, आज तुम्हारे-हमारे ऊपर डाला जावेगा। मुसाहिबजू को जागीर डाके डलवाने के लिये नहीं लगाई गई है। सेना राज्य के बैरियों के नाश के लिये मेरा निमक खाती है, राज्य के साहूकारों को मिटाने के लिये नहीं। यदि अब इस सेना के लिये डाके डालने के सिवा और कुछ काम नहीं रहा है, तो सबको बरखास्त करके क़ैद में डाल दो। सुनते-सुनते हैरान हो गया हूं। हद हो गई। बाहर के लोग सुनेंगे; तो क्या कहेंगे? कितनी बदनामी होगी! देखते हो कि युग बहुत खराब है।'

युग का नाम लेते ही दीवान की आँखों के सामने ग्वालियर के सिन्धिया और मालवा तथा बङ्गाल के अंगरेज़ों का चित्र घूम गया। वह तुरन्त बोला—'महाराज की आज्ञा तुरन्त अमल में लाई जावेगी।'

राजा सोचने लगे। सोचते-सोचते कुछ पल बीत गये। क्रोध का स्थान दूरदर्शिता लेने लगी। फिर राजा ने उसी स्वर में कहा—मुसाहिबजू को इसी क्षण मेरे सामने हाजिर करो। मैं देखता हूं।'

साहूकार लोगों को ढाढ़स बँधा; परन्तु वे मुसाहिबजू के समक्ष न रहकर घर जाना चाहते थे। राजा भी नहीं चाहते थे कि वे लोग दरबार में और अधिक ठहरें। इसलिये संकेत पाते ही वे लोग न्याय की आशा में अपने-अपने घर चले गये। उनके चले जाने पर थोड़ी देर दरबार में स्तब्धता ने सब लोगों को जकड़-सा लिया। राजा सबसे पहले बोले—'मुसाहिबजू को क्या इस बात का पता न होगा?'

दीवान ने उत्तर दिया—'न होगा, महाराज! उनके कान में खबर पड़ गई होती, तो वे अपराधियों को कोतवाली भेज देते।'

कोतवाल ने कहा—'अन्नदाता; मैं अभी जाकर उनसे बातचीत करता।'

राजा ने कुछ सोचकर कहा—'नहीं, यह उचित न होगा। रामसिंह धंधेरे को बुलाकर कहलवाये देता हूँ। आज तो मुझको मिलने का अवकाश न होगा। कल बुलवाऊंगा।'

कल के लिये मामले की जांच स्थगित करके राजा महलों में चले गये। दीवान चिन्ता में और कोतवाल चिन्तन में किले से बाहर हुये! दोनो अपनी-अपनी सेजगाड़ी में किले तक आये थे। सवार होने के पहले दीवान ने कहा—'मुसाहिबजू कल राजा के सामने आने के पहले ही यदि अपराधियों को पकड़ कर पेश कर दें, तो सारी समस्या हल हो जावेगी।'

कोतवाल बोला—'धंधेरे को बुलवाया है। मैं ही उससे कह दूँगा।'

'परन्तु', दीवान ने कोतवाल को सावधान करते हुये कहा—'धंधेरे को राजा के सामने अनजान बनकर जाना चाहिये।'

— १५ —

रामसिंह धंधेरे को बुलावा आने के पहले ही मुसाहिबजू और उनके अन्य सरदारों सिपाहियों की बात मालूम हो गई। रामसिंह बुलाने वाले की बाट देखने लगा। मुसाहिबजू ने बिना किसी घबराहट के लल्ली और रमू को बुलाया उनके आने पर मुसाहिबजू ने हुक्का मँगवाया। लल्ली और रमू को बुलाये जाने का कारण भासित हो गया था। वे यथास्थान चुप खड़े थे।

मुसाहिबजू ने हुक्का बिना पिये कहा—'हम समझते थे कि हमारे आदमी हमारे लिये नाम कमायेंगे, परन्तु उन्होंने मुँहपर पोतने के लिये कालोंच तैयार की है।'

लल्ली चुप रहा। रमू ने हाथ जोड़ कर अज्ञता प्रकट की—'मर्जी।'

मुसाहिबजू—'मैं समझता था कि मिहतर बड़े ईमानदार होते हैं; परन्तु, रमू क्या, अब मेरा ख्याल बदल गया है।'

रमू—'सो क्यों राजा?'

मुसाहिबजू—'लल्ली से पूछो। यह कौन-सा जेवर कुल्ली के पास गिरवी रखने गया था?'

लल्ली—'महाराज, अपना।'

मुसाहिबजू—'गङ्गा जी की सौगन्ध खाकर कहेगा?'

लल्ली—'चाहे जिसकी; अन्नदाता!'

मुसाहिबजू ने हुक्का हटा कर ताव के साथ पूछा—'मेरी सौगन्ध खाकर कहेगा?'

लल्ली ने भी ताव के साथ उत्तर दिया—'कभी नहीं, चाहे सिर कट जाय।'

'पाजी कहीं का।' मुसाहिबजू ने तमक कर कहा—'क्यों ऐसा किया ? किसके कहने से किया ? चिरूला के पास के दफीने की कहानी किसकी गढ़न्त है ?'

रमू ने अपने स्थान पर ही पृथ्वी पर सिर टेककर मुसाहिबजू से प्रार्थना की—'राजा, यदि किसी को दण्ड दिया जाना है, मुझको मिलना चाहिये। मैंने, पूरन ने और मेरे सगे सम्बन्धियों ने बारदात की। लल्ली माते को मैं घसीट कर ले गया। इनकी इच्छा न थी। मुझको मारो, चाहे पालो, क़दमो मे हूं।'

मुसाहिबजू की आँखे लाल हो गईं और गला बैठ गया। बहुत धीमे स्वर मे बोले—'राजा के सामने बुलाये जाने पर क्या कहोगे ? ज़ेवर का क्या हुआ ?'

'हम लोगों ने बाँट खाया।' रमू ने दृढ़तापूर्वक जवाब दिया—'हमारे पास उसका अब रञ्च-मात्र बाकी नहीं है।'

'और' लल्ली ने साहस के साथ कहा—'चाँदी का सारा जेवर मेरे बाँट मे पड़ा। मै उनको कुञ्जी के यहाँ गिरवी रखने गया और ज्योंही मालूम हुआ कि उसका माल है, उसके घर छोड़ आया।'

'सोने का कौन-कौन-सा गहना तुम लोगो के हाथ लगा था ?'—मुसाहिबजू ने और भी अधिक धीमे स्वर मे प्रश्न किया।

रमू ने हाथ जोड़कर तुरन्त उत्तर दिया—'राजा, हम लोगों ने उसी रात कुचल-पिचलकर जेवर गला दिया, इसलिये नहीं बतला सकते कि सोने के कौन-कौन से गहने थे।'

उसी धीमे स्वर मे मुसाहिबजू ने लल्ली से पूछा—'क्यों बे, तूने चांदी के जेवर क्यों नहीं गलाये ?'

लल्ली ने निर्भीकता के साथ उत्तर दिया—'महाराज, उन गहनों की बनक बहुत अच्छी थी, इसलिए उनको नहीं तोड़ा-फोड़ा।'

मुसाहिबजू ने एक गहरी सांस ली। फिर हुक्का पीने लगे। इतने में रामसिंह धंधेरा आया। मुजरा करके निकट ही बैठ गया। मुसाहिबजू ने मुस्कराकर हुक्का धंधेरे के सामने बढ़ा दिया। रामसिंह ने जरा अटक कर हुक्का पीते-पीते कहा—'एक बिनती है।'

'कहो न।'—मुसाहिबजू ने शान्ति के साथ अनुरोध किया।

'आपको कुछ मालूम है?'—रामसिंह ने कहा और रमू तथा लल्ली की ओर देखने लगा।

मुसाहिबजू बोले—'यही न कि बनियों पर इन लोगों ने डाका डाला है?'

रामसिंह—'जी हां।

मुसाहिबजू—'झूठ है।'

रामसिंह—'कुल्ली के यहां लल्ली जो जेवर गिरवी रखने गया था, वे पहचान लिये गये हैं।'

मुसाहिबजू—'उनको तो लल्ली अपना बतलाता है।'

रामसिंह—'जिस सुनार ने उन जेवरों को बनाया है, वह जीवित है और उसका निशान कुछ जेवरों पर है।'

मुसाहिबजू जरा चौंके। उनको यह बात मालूम न थी। यकायक लल्ली से बोले—'क्यों जी, जेवरों पर ये निशान कैसे?'

लल्ली ने तुरन्त उत्तर दिया—'अन्नदाता, मैंने इसी सुनार से ये गहने बनवाये थे। यह सुनार केवल कुब्जी के ही गहने तो बनाता नहीं है।'

मुसाहिबजू के चेहरे पर कुछ सन्तोष की रेखा आई. रामसिंह ने व्यङ्ग का मुस्कराहट के साथ कहा—'परन्तु वह सुनार यह नहीं कहेगा। वह तो यह कहेगा कि कुब्जी के लिये बनाये थे।'

लल्ली ढिठाई के साथ बोला—'उस सुनार से मेरी शत्रुता है।'

मुसाहिबजू ने ताअज्जुब के साथ कहा—'यह तो सम्भव है।'

रामसिंह उसी व्यग के साथ बोला-'परन्तु जो बात सम्भव नही है, वह यह है कि लल्ली के घर मे किसी प्रकार की कोई भी स्त्री नही है। माते ने पैजने किसके लिये बनवाये ?'

लल्ली ने सिर नीचा करके कहा—'ब्याह करूँगा, इसीलिये पैजने ढलवाये थे।'

रामसिह को हँसी आ गई। मुसाहिबजू क्षुब्ध स्वर मे बोले-'चुप बेहया।' वे रामसिह से कुछ कहना चाहते थे, पर रामसिह ने उनके सामने हुक्का कर दिया। वे चुपचाप पीने लगे। रामसिह की समझ मे सम्पूर्ण परिस्थिति आ गई। रामसिह ने दक्षता के साथ कहा—'महाराज के पास आज साहूकार लोग गये थे। दीवान और कोतवाल को भी ले गये थे। सबकी सुनकर उन्होंने आपको बुलाकर पूछने और अपराधियो को दण्ड देने का निश्चय किया है। वे हलकारो को सीधा आपके पास नहीं भेजेंगे। पहले मुझको बुलाया है। मुझको हुक्म होगा कि मै आपको लिवा ले चलूँ।'

मुसाहिबजू एक निश्चय पर पहुच चुके थे। बोले—'कुँवर साहब, तुम महाराज के पास हो आओ। जो कुछ कहें, बतलाना। मै कल उनके दर्शन करूगा।'

रामसिह ने विनयपूर्वक कहा—'आप वहा क्या कहेंगे, मुझको कुछ बतला दिया जावे, तो उसी ढाल पर मै भी चर्चा चला दूँगा।'

मुसाहिबजू ने निश्शंक होकर कहा—'मेरे आदमियो ने डाका नही डाला। वे निर्दोष हैं। जिन्होने डाला हो, उनको ढूँढ़ा-खोजा जावे और दण्ड दिया जावे। नाहक हमको और हमारे सिपाहियो को बदनाम किया जा रहा है।'

राजा से जो वार्तालाप करना था, उसकी प्रणाली रामसिह ने मनमे बना ली।

— १६ —

रामसिंह तुरन्त राजा के पास पहुँचा। राजा ने उससे अकेले में बातचीत की।

राजा—'मुसाहिबजू को कल तक का समय देता हूं। वे कल सारे अपराधियों को कोतवाली में उपस्थित कर दें।'

रामसिंह—'जिस किसी को भी दण्ड देना हो, अन्नदाता स्वयं अपने हाथ से दें, यही विनती है।'

राजा—'अच्छा, तो मेरे सामने पेश कर दें।'

रामसिंह—'कल मुसाहिबजू को क़िले में बुलाने की मर्ज़ी हुई है?'

राजा—'हाँ, कल दोपहर बाद भेज दो।'

रामसिंह—'महाराज, यह क्या निस्सन्देह है कि मुसाहिबजू के सिपाहियों ने ही यह कर्म किया है?'

राजा—'चांदी के गहने कुञ्जी ने पहचान लिये है।'

रामसिंह—'ठीक मर्ज़ी हुई, परन्तु अन्नदाता, लल्ली कहत है कि वे जेवर उसी के है।'

राजा—'जिस सुनार ने बनाये है, वह सौगन्ध खाता है कि उसने कुञ्जी के लिये बनाये थे।'

रामसिंह—'हुज़ूर, उसका लल्ली से बैर है।'

राजा—फिर लल्ली कुंजी के यहां जेवर छोड़कर क्यों भाग आया? वह बिन्तवार क्यों नहीं हुआ?'

रामसिंह—'वह डर गया होगा, महाराज!'

राजा—'कुँवर साहब, लल्ली सिपाही कुञ्जी बनिये से डर गया!'

रामसिंह—'महाराज, बनियों की हथौड़ी ऊपर से सीधी तथा भयभीत होती है, और भीतर से वक्र तथा निर्भीक।'

राजा—'और मुसाहिबजू के सैनिकों की बनक ऊपर से बक्र और निर्भीक तथा भीतर से सीधी और भयभीत, क्यों कुँवर साहब ?'

रामसिंह- 'अन्नदाता की मर्जी ठीक है। मैं कैसे मुँह लग सकता हूं, चरणों का सेवक हूँ।'

राजा—'रामसिंह, किसी युग में राजा अपने भाई का भी ऐसा बर्ताव सहन नहीं करता होगा। और अब तो सब ओर निगाह रखनी पड़ती है। हमारे जितने मित्र नहीं, उतने शत्रु हैं। अङ्गरेजों के जनरल के कानों में विष भरने के लिये ग्वालियर, समथर इत्यादि माओ प्रण किये बैठे हैं।'

रामसिंह—'महाराज, चाहे जिसको चाहे जैसा दण्ड दें, परन्तु अर्ज यह है कि सेना तितर-बितर न होने पावे। मैं तो छोटी बुद्धि का आदमी हूं। हुजूर सब तरफ को देख सकते हैं। मुझको अङ्गरेजों से उतनी शङ्का नहीं है, जितना मराठों से। मराठे हमारी भूमि के गाहक हैं, किन्तु अङ्गरेज केवल शान्ति चाहते हैं।'

राजा—'अंगरेज वास्तव में क्या चाहते हैं, यह तो आगे चलकर ठीक-ठीक मालूम होगा, परन्तु इसमें बहुत-कुछ सत्य है कि मराठे हमारे पुश्तैनी दुश्मन हैं।'

थोड़ी देर तक राजा और रामसिंह दोनों चुप रहे। राजा ने रुखाई के साथ कहा—'रामसिंह, इतना बड़ा अधर्म सहज ही नहीं पचाया जा सकता, चाहे जो-कुछ हो।'

रामसिंह गुञ्जाइश समझकर बोला—'हुजूर, पहले जमाने से सुनते आये हैं—ब्राह्मण अपराधी को कुछ दण्ड, क्षत्रिय को कुछ और, वैश्य को और ही दूसरे प्रकार का और शूद्र को अत्यन्त कठोर।'

राजा जरा हँसे, फिर कठोर धीमे स्वर मे बोले—'कुँवर साहब, वह जमाना मुसलमानों के पहले था। पठानों और मुगलों के जमाने में वे अन्तर बहुत-कुछ टूट गये।'

रामसिंह ने उस हँसी में आशा की झलक और कठोर धीमे स्वर में दृढ़ता की कमी का आभास पाकर जरा दृढ़तापूर्वक कहा—'अन्नदाता, अनेक बड़े अन्तर फिर भी बने रहे। राजवंश का अपराधी उस दण्ड का भागी नहीं हुआ, जो साधारण जनता के दोषियों को समान अपराध के लिये दिया जाता था।'

राजा के मनमें कुढ़न हुई। कुछ देर चुप रहकर बोले—'तुम्हीं लोग सब बातों का निर्णय कर लिया करो। राजा की क्या जरूरत?'

रामसिंह राजा के स्वभाव से परिचित था। वह सिर झुका कर चुप हो गया। राजा ने दृढ़तापूर्वक कहा—'कल दोपहर बाद मुसाहिबजू को भेजो। वैसे कोतवाल के द्वारा बुलवाता, पर उनके पद-गौरव की रक्षा की इच्छा से तुम्हारे द्वारा बुलवाता हूं।'

रामसिंह प्रणाम करके चला गया।

— १७ —

राजा के पास से लौटकर रामसिह ने मुसाहिबजू को समाचार सुनाया। मुसाहिबजू की छावनी मे बात फैल गई। रमू बिना बुलाये हाजिर हुआ। मुजरा करके बोला—'अन्नदाता, किले क्यो जावे ? असली अपराधियो को लेकर मै राजा के कदमो मे पहुँचता हूँ। फिर उनको जो अच्छा लगे, करे।'

'किन-किन को लेकर जाओगे ?'—मुसाहिबजू ने बिना उत्सुकता प्रकट किये प्रश्न किया।

रमू ने कई बुड्ढे मिहतरों के नाम गिनाये—अपना नाम सबसे पहले लिया। लल्ली को छोड़ दिया। मुसाहिबजू ने पूछा—'लल्ली को क्यो छोड़ दिया ?'

रमू ने उत्तर दिया—'माते हम लोगो के साथ में न थे।'

'और पूरन ?'—रामसिह ने सुझाते हुये पूछा।

मुसाहिबजू ने रमू की ओर से जवाब दिया—'पूरन नही था। पूरन उस दिन सारे समय मेरे पास था।'

रमू की आँख डबडबा आई। बोला—'मालिक, डाके मे क्या दण्ड दिया जाता है ?'

मुसाहिबजू उत्तर न दे पाये। रामसिह ने तुरत कहा—'सूली, सिर काटना, देश-निकाला और सब जायदाद जब्त।'

रमू मुस्कराकर बोला—'जायदाद तो हम लोगो की हमारे मालिक है, सो उसका कोई डर नही। देश-निकाला हम लोग ओढ़ नही सकते, क्योंकि दतिया के बाहर हमारा कोई सहारा नही, इसलिये पहले दण्ड के लिये हम सब तैयार हो जावे।' रमू जाने के लिये उद्यत हुआ

'रमू,' मुसाहिबजू ने बारीक स्वर में कहा—'बिना मेरे हुकुम के किले-बिले मे कहीं मत जाना।'

रमू ने 'बहुत अच्छा' कहा, एक लम्बी सांस ली और बाहर चला गया।

रामसिंह ने कहा—'डाका तो रमू ने ही कबूल कर लिया। अब क्या होगा ?'

मुसाहिबजू ने उत्तर दिया—'मै राजा के पास जाऊँगा। जो कुछ दण्ड उनको देना हो, मुझको दें।'

रामसिंह ने विनय की—'जो-कुछ आप करें, समझ-बूझ-कर करें। बड़ा नाम है, बड़ा काम है। उतावली में आकर कुछ कर न बैठियेगा।'

'हूँ'—कहकर मुसाहिबजू चुप हो गये। संकेत पाकर राम सिंह चला गया। खबर भेजकर मुसाहिबजू चरखारी वाली सरकार के पास गये। उनको परिस्थिति का आकार-प्रकार बहुत कुछ मालूम हो चुका था। पान खाने के बाद मुसाहिबजू ने कहा- कल किले का बुलावा है।'

चरखारी वाली बोली—'मैने भी सुना है।'

मुसाहिबजू—'सिहनर नहीं मारे जा सकेंगे।'

चरखारी वाली—'जब आप सरीखे स्वामी रक्षा करने को सन्नद्ध है, तो कैसे मारे जायँगे ?'

मुसाहिबजू—'राजा ने हठ पकड़ा है। किसी ने उनके कान भरे हैं।'

चरखारीवाली—'कोतवाल तो अपने ही आदमी है। उनकी नातेदारी चरखारी मे है। लाला कृष्णराम अमीन उनके फूफा होते हैं।'

मुसाहिबजू—'यहां भी दीवान, अमीन, कोतवाल सब अपने है, परन्तु राजा के ढीमर को साहूकारों ने मिला लिया है। वह राजा के कान भरा करता है।'

चरखारी वाली—'रामसिंह द्वारा उस ढोमर को आप ठीक करवाते। क्या अब कुछ नहीं हो सकता है ?'

मुसाहिबजू—कुंवर रामसिंह का कुछ मन फटा हुआ-सा है। मैं हलकी बात कहने की इच्छा नहीं कर सका।'

चरखारी वाली—'सुनते हैं; एक नाई भी महाराज के बहुत कान लगा है। उसकी मार्फत कुछ हो सकता हो।'

मुसाहिबजू—'यदि न हो सका, तो कदर और जावेगी, नाई से बढ़कर राजा उस ढोमर को मानते हैं।'

चरखारीवाली—'अपने आदमियों को बचाने के लिये कोई कसर नहीं रखनी चाहिये।'

मुसाहिबजू—'आप कुछ कर सकती हैं ?'

चरखारीवाली—'क्या ?'

मुसाहिबजू—'आप रानी साहिबा से कुछ विनती करें।'

चरखारीवाली—'वे उस दिन मुझको लिवा ले जाने के लिये यहां आई थीं। मैं न जा सकी, इसलिये बुरा मान गई हैं। मैं नहीं जाऊंगी।'

मुसाहिबजू—'तब जो मैंने निश्चय किया है, वह करूँगा।

चरखारीवाली—'क्या ?'

मुसाहिबजू—'मैं स्वयं जाकर सब अपराध अपने सिर ले लूँगा, क्योंकि वास्तव में मेरे सिपाही निर्दोष हैं।'

चरखारी वाली—'मैं रानी के पास चला जाती, परन्तु वे कुछ न करेंगी और न कर सकेंगी। उनकी नहीं चलेगी। मेरा मान घटेगा।'

मुसाहिबजू दो क्षण चुप रहे, हिम्मत बाँधकर बोले—'अब तो जो-कुछ होना है, वह होगा ही। माफी हो, तो एक बात पूछूँ ?'

चरखारी वाली ने मुस्कराकर दृढ़तापूर्वक कहा—'पूछिये।'

मुसाहिबजू ने पूछा—'यह डाका आपने डलवाया था ?'

चरखारी वाली सरकार के होठों पर से मुस्कराहट चली गई। आँखों में तेज भर गया। उत्तर दिया—'मै डाका डलवाती।'

मुसाहिबजू की सहसा प्रवृत्ति जाग्रत हो चुकी थी। बोले—'अपने-आप इतना बड़ा काम ये मिहतर कैसे कर सकते थे? और फिर गहना-पत्रा सब उन लोगों ने यहाँ भिजवा दिया था। कुछ भी अपने लिये नहीं रखा। क्या मालिक के हुकुम के बिना ये लोग डाका डाल सकते थे?'

चरखारी वाली—'ठीक यही प्रश्न राजा आपसे करेंगे।'

मुसाहिबजू—'तब क्या उत्तर दूँगा?'

चरखारीवाली—'यही कि डाका आपकी पत्नी ने डलवाया है।'

मुसाहिबजू—'राजाको जो-कुछ उत्तर दूँगा, कल सुन लीजियेगा।'

चरखारी वाली—'मै अभी सुनना चाहती हू।'

मुसाहिबजू—'अपने स्वभाव के कारण मै दरिद्र होगया हू। सेना के पालन मे चरखारी का सब गहना बेच खाया। इसलिये कमी को पूरा करने की गरज से मिहतरों द्वारा बटमारी करवाई।'

चरखारी वाली—'और गहने का क्या किया?'

मुसाहिबजू—'अपने घर केरुआ भेज दिया।'

चरखारी वाली—'मै अभी राजा के पास समाचार भेजती हू कि गहना मेरे पास है और डाका मैने डलवाया था।'

क्रोध के मारे मुसाहिबजू की छाती जलने लगी, परन्तु उन्होंने कहा—'आपको मेरे सिर की सौगन्ध है, जो आप ऐसा कुछ भी करें। यदि आपने मेरी सौगन्ध का उल्लङ्घन किया, तो बन्दूक मारकर मर जाऊँगा।'

कुछ ठण्डक के साथ चरखारी वाली सरकार बोलीं—'और यदि आपने इस बोझ को अपने सिर लिया और आपको कुछ हो गया, तो भरी हुई पिस्तौल मेरे पास भी है।'

मुसाहिबजू अपनी ड्योढ़ी मे चले आये।

— १८ —

दूसरे दिन तामझाम से बैठकर मुसाहिबजू नियत समय पर किले मे पहुँचे। उस दिन वे अपनी सबसे अधिक तड़क-भड़क दार पोशाक पहनकर गये थे। मुजरा करके राजा के सामने हाथ बाँधकर खडे हो गये। दीवान और कोतवाल बैठे हुये थे। उन लोगो ने ओट लेकर मुसाहिबजू का अभिवादन किया। राजा ने मुसाहिबजू को यथास्थान बिठला लिया। राजा के लिये हुक्का आ गया। वे गुड़गुड़ाने लगे। सब लोग नीचे सिर किये चुपचाप बैठे रहे।

सबसे पहले दीवान बोला—'अन्नदाता, अबकी बार वर्षा बहुत खिच गई है। ढोरों और आदमियों को बड़ा कष्ट हो रहा है।

राजा ने कहा—'बहुत देर तो कुछ हुई नहीं है। आसाढ़ उतरना आरम्भ हुआ है।'

कोतवाल—'चारे की कमी हो गई है।'

राजा—'लू बहुत चल रही है। पानी अच्छा बरसेगा।'

दीवान—'कुओं मे पानी काफी नीचे उतर गया है।'

कोतवाल—'ब्याह-बराते बहुत हो रही हैं। पानी और चारे की त्राहि-त्राहि मची हुई है।'

राजा—'अभी तो कुछ लगने और है।'

दीवान—'इस वर्ष तो महाराज, ब्याह फूट-से पड़े है।'

राजा—'सो तो हर साल ही ऐसा होता है। ब्याह-शादी, मरग-मौत सब साथ लगे हुये है।'

इसके बाद फिर स्तब्धता छा गई। राजा ने हुक्का पीते-पीते मुसाहिबजू से कहा—'मुसाहिबजू!'

मुसाहिबजू हाथ जोड़कर बोले—'मर्जी।'

राजा—'रामसिंह ने कोई सम्वाद दिया था ?'

मुसाहिबजू—'हां, अन्नदाता !'

राजा—'वे लोग कहां हैं ?'

मुसाहिबजू—'वे महाराज, चाकरी पर हैं।'

राजा—'दतिया में ?'

मुसाहिबजू—'हां, गरीबपरवर !'

राजा—'यहां क्यों नहीं ले आये ?'

मुसाहिबजू—'जैसी मर्जी हो।'

राजा—'मैंने यहाँ आने के लिये आदेश दिया था।'

मुसाहिबजू—'जो हुकुम। वे लोग हर जगह हुजूर का ही तो निमक खाते हैं।'

राजा—'मैं पूछता हूं, उनको यहाँ क्यों नहीं ले आये ?'

मुसाहिबजू—'मैंने, महाराज, विनती तो की है।'

राजा—'उन लोगों ने डाका डाला ?'

मुसाहिबजू—'नहीं तो महाराज !'

राजा—'लल्ली आपकी सेना में नौकर है ?'

मुसाहिबजू—'वह महाराज का ही निमक खाता है।'

राजा—'अरु कर करनी करै लड़ाई ! डाके का जेवर कुब्जी सेठ के यहाँ गिरवी रखने गया था ?'

मुसाहिबजू—'महाराज, वह अपना जेवर गिरवी रखने गया था।'

राजा—'फिर छोड़कर क्यों भाग आया ?'

मुसाहिबजू—'क्योंकि, हुजूर, उसमें मिहतरों-जैसी हिम्मत नहीं है।'

राजा—'डाका मिहतरों ने ही डाला है। आपकी सोने की पहुँचियाँ कुब्जी के यहाँ गिरवी रखी गई थी ?'

मुसाहिबजू ने उत्तर नहीं दिया। राजा ने प्रश्न को दुहराया। मुसाहिबजू चुप रहे। राजा का क्षोभ बढ़ने लगा। राजा ने पूछा—'वे पहुँचिया आपके घर में फिर पहुँच गई हैं? कैसे पहुँची?'

मुसाहिबजू ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—'केरुआ में एक जोड़ पहुँचियां ही नहीं है, अनेक जोड़ है।'

राजा—'केरुआ का हाल मुझको भी मालूम है। परन्तु ये पहुँचियाँ चरखारी की थी।'

मुसाहिबजू—'चरखारी में केरुआ की भी अपेक्षा अधिक पहुँचियाँ है।'

राजा—'मैं नहीं चाहता कि मेरे द्वारा आपका अपमान हो। मिहतरो और लल्ली को आज एक घण्टे के भीतर किले के फाटक पर हाज़िर करिये। यदि आपने ऐसा न किया तो आपको कठोर दण्ड दिया जावेगा।'

मुसाहिबजू—'अन्नदाता का निमक मेरे कण-कण में है। जो दण्ड देना हो, उसको भुगतने में नाही नही करूँगा।'

राजा—'परन्तु उन बदमाशों को यहाँ आप पेश नहीं करेंगे?'

मुसाहिबजू ने सिर नीचा किये हुये हाथ जोड़कर उत्तर दिया—'महाराज, वे सिपाही है, बदमाश नहीं है।'

'चुप रहिये'—राजा ने तमककर कहा। दरबार में सन्नाटा छा गया। राजा क्रोध के मारे काँपने लगे। फिर हुक्के की निगाली मुँह में देकर कुछ सोचने लगे। कुछ क्षण उपरान्त बोले—'कोतवाल!'

कोतवाल—'मर्ज़ी, हुज़ूर!'

राजा—'यदि एक घण्टे के भीतर मुसाहिबजू के मिहतर और लल्ली लोधी किले के फाटक पर हाज़िर न हो जायँ तो तुम उनको पकड़ कर लाओ। चाहे कुछ हो।'

संकेत पाकर सब लोग दरबार से चल दिये। मुसाहिबजू तामझाम में बैठकर घर आये। घर पहुँचने के पहले ही उनकी छावनी में राजा की आज्ञा का समाचार आ गया था। सारे सिपाही घबराहट और चिन्ता में मुसाहिबजू की बाट देख रहे थे। उन्होंने आते ही सिपाहियों को आज्ञा दी—'सब लोग पकड़े न जाने के लिये तैयार रहो। गोली-बारूद हमारे पास काफी है।'

— १६ —

कोतवाल ने घर पहुँचकर अपने सिपाहियों को इकट्ठा किया। गोली-बारूद से बन्दूकें सजा लीं। इतने में दो घंटे से भी अधिक समय होगया। मुसाहिबजू का कोई भी आदमी किले के फाटक पर या कोतवाली में हाजिर नहीं हुआ। कोतवाल हिम्मतवाला था और काफी चतुर। उसने रामसिंह को बुलवाया। कोतवाली का जो सिपाही बुलाने गया था, कहता आया कि उन्होंने घर के भीतर से ही जवाब दे दिया कि कह देना, कहीं बाहर गये हुये हैं।

इतने में राजा का हलकारा कोतवाली आया। उसने कोतवाल को राजा की आज्ञा सुनाई—'फेरूआवालों ने अपराधियों को अभी तक पेश नहीं किया है। यदि अपराधी पेश नहीं किये जावें अथवा पकड़ने में न आवें, तो मुसाहिब दलीपसिंह को क़ैद करके किले ले आओ और बन्दीगृह में बन्द कर दो। अन्यथा आज ही उनको देश-निकाला दे दो।'

कोतवाल इस तरह की आज्ञा के जारी होने की पहले ही कल्पना कर चुका था। उसने हलकारे को उत्तर दिया—'कदमों में विनती जाहिर करना कि आज्ञा के अक्षर-अक्षर का पालन किया जावेगा।'

हलकारे के चले जाने के उपरान्त कोतवाल कपड़े पहनकर मुसाहिबजू के निवासस्थान—भरतगढ़ फाटक—पर अकेला गया। उसने साथ में कोई हथियार भी नहीं लिया। वहां मुसाहिबजू के सारे सिपाही हथियार बांधे लड़ाई के लिये तैयार थे। ड्योढ़ी पर स्त्रियाँ भी बन्दूकें लिये सावधान थीं।

कोतवाल सिपाहियों के बीच में धरा गया। बोला—'मुसाहिबजू की सेवा में मुजरा जाहिर करो। मुझको मिलना है। अच्छा समाचार है।'

सिपाहियों ने कहा—'हमको बतलाइये।'

कोतवाल ने उत्तर दिया—'तुम्हारे बतलाने की बात नहीं है। मैं तुम सबों के बीच में ही तो उनसे मिलूँगा। कोई हथियार भी साथ नहीं लिये हूँ। चाहो तो मुझको एक बार में समाप्त कर देना। समय नहीं है। बहुत जरूरी समाचार है। मुसाहिबजू को शीघ्र खबर दो।'

मुसाहिबजू के पास खबर पहुँच गई। उन्होंने कोतवाल को बुलवा लिया। पान-इलायची के उपरांत मुसाहिबजू ने आने का कारण पूछा—जैसे कोई बात ही न हो। बैठक में कुछ हथियार-बन्द सिपाही आ गये।

कोतवाल ने उत्तर दिया—'क्या यह घर मेरा नहीं है?'

मुसाहिबजू ने हँसकर कहा—'अवश्य है। तब तो आये। समाचार सुनाइये।'

कोतवाल ने सिपाहियों की ओर दृष्टिपात करके कहा—'क्या कोई जल्दी है?'

'नहीं', मुसाहिबजू बोले—'ऐसी कोई जल्दी नहीं है। अकेले ही आये हो? हुक्केवाला भी साथ नहीं लाये?'

'अकेले में प्रार्थना करूँगा'—कोतवाल ने माथे का पसीना पोंछते हुये कहा।

मुसाहिबजू ने सिपाहियों को बैठक से बाहर कर दिया और चर्चा के लिये कोतवाल का मुँह ताकने लगे।

कोतवाल ने कहा—'महाराज बहुत नाराज हैं। आपने सेना को किसलिये तैयार किया है? महाराज सुनेंगे तो क्या कहेंगे? आपको शायद क्षमा भी कर दें, परन्तु मुझको तोप से उड़वा देंगे। आपने यह नहीं सोचा कि इसका फल क्या होगा।'

मुसाहिबजू—'तो क्या मै अपने आदमियो को यो ही मरवा देता ? वैसे वे कुत्ते की मौत मारे जाते, अब सिपाहियो की गति पावेगे। ड्योढी पर स्त्रियो को भी तैयार देखा होगा ?'

कोतवाल—'राजा की आज्ञा का पालन करना चाहिये था। हम सबने उनका निमक खाया है।'

मुसाहिबजू—'राजा कहे कि अपने थाने के सब सिपाहियो को विष दे दो, तो दे दोगे ?'

कोतवाल सोचने लगा। सोचकर बोला—'आपके लिये और कोई उपाय रहा भी नही था। परन्तु सवाल है, राजा को कैसे समझाया जावे ?'

मुसाहिबजू के मन मे जो बात कुछ क्षण पहले उठी थी, उन्होंने कही—'राजा ने कोई नवीन आज्ञा निकाली है ?'

कोतवाल ने कहा—'हा।'

मुसाहिबजू ने बिना किसी सयम के तुरन्त पूछा—'वह क्या ? क्या आज्ञा निकाली है ?'

'उसी को प्रकट करने अकेला आया हू।' कोतवाल ने मुसाहिबजू की आँख मे आँख गड़ाकर उत्तर दिया—मर्जी हुई है कि मिहतरो को और लल्ली को पकड़ कर किले के बन्दीगृह मे बन्द करदो और आपको पकड़कर दरबार मे पेश करो।'

मुसाहिबजू ने भी निगाह मिलाते हुये ही कहा—'और यदि ऐसा न हो सके, तो ?'

कोतवाल बोला—'इसके आगे उन्होंने और कुछ मर्जी तो नही की है, परन्तु इसके आगे जो-कुछ होना चाहिये वह मै समझ गया हू।

मुसाहिबजू—'वह क्या ?'

कोतवाल—'वह यह कि अपने ऊपर हथियार चलाकर मै आत्मघात करलू।

मुसाहिबजू ने दृढ़तापूर्वक कहा—'जो-कुछ भी हो। राजा की आज्ञा का पालन मेरे जीते जी नहीं हो सकता।'

कोतवाल ठण्डक के साथ बोला—'परन्तु आपको यह नहीं भूलना चाहिये कि राजा को अपने हठ के सामने फिर किसी बात का लिहाज़ नहीं रहता।' मुसाहिबजू उपयुक्त उत्तर सोचने लगे। कोतवाल कहता गया—'आपके सिपाहियों के हथियार राजा पर आई हुई किसी विपद को काटने के लिये उठने चाहिये थे, सो आपस वालों का खून बहाने के लिये उठने को है। ऐसी लड़ाई से दतिया का राज्य नष्ट हो जावे, सो होगा नहीं। आपके अनेक सिपाही मारे जावेंगे और राजा के भी अनेक सिपाही और सरदार। आपकी जागीर भी समाप्त हो जावेगी। आगे आने वाला युग हम सबको नाम धरेगा। मुझको कहेंगे कि या तो मैंने राजद्रोह किया या मित्रद्रोह, और आपके लिये जो कुछ कहा जावेगा उसको तो मुँह से कहते नहीं बनता।'

मुसाहिबजू ने अनुरोध किया—'कसम है बतलाइये मुझको क्या कहा जावेगा ?'

कोतवाल ने विनय के स्वर में कहा—'पहले क्षमा कर दिया जाऊँ, तो कह दूँगा।'

मुसाहिबजू बोले—'मैं कसम धराकर पूछ रहा हूं बेखटके कहो।'

कोतवाल ने ठण्डक और दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—'लोग कहेंगे कि मुसाहिबजू निमक हराम थे।'

मुसाहिबजू सन्नाटे में आगये। क्रोध के आवेग में काँप गये एक बार पास में रखी हुई अपनी दुनाली की ओर आँख गई, फिर शान्त स्वर में बोले—'केरुआ के पँवारों ने कभी स्वामिघात नहीं किया।'

कोतवाल ने परिस्थिति को तुरन्त ताड़ कर कहा—'मैं पहले ही माफी माँग चुका था। एक विनती है। करूँ ?'

मुसाहिबजू ने बरबस मुस्कराकर उत्तर दिया—'अब और क्या कहने को बाकी रहा ? कह डालो।'

'नहीं, ऐसी मर्जी न हो।' कोतवाल उसी ठण्डक के साथ बोला—'इस लड़ाई मे अपने आदमियो को कटवा कर यदि आप बचगये, तो केरुआ ही तो जावेंगे, चरखारी तो जावेंगे नहीं ?'

मुसाहिब ने कहा—'प्रतीत तो ऐसा होता है।'

कोतवाल ने तुरन्त प्रस्ताव किया—'तो आप सब आदमियो को और सामान को लेकर केरुआ क्यों नहीं चले जाते ? कुछ समय उपरान्त राजा शान्त हो जावेंगे। आपके लिये उनका मन बदल जावेगा और आपको फिर सम्मान-सहित बुला भेजेंगे। जागीर भी बच जावेगी।'

मुसाहिबजू सोच विचार मे डूबने उतराने लगे। काफी समय तक सोचते रहे। कोतवाल ने फिर कहा—'मै आपका स्नेहपात्र हूं और राजा का नौकर। आपके आदमी हथियारबन्द है। दतिया मे या दतिया के बाहर भी कोई आपके प्रति उँगली नहीं उठा सकता। आप मुझसे इस सम्बन्ध मे चाहे जैसी सौगन्ध ले ले।

मुसाहिबजू ने कोतवाल के प्रस्ताव को स्वीकृत किया, परन्तु कसम के लिये गङ्गाजली मँगवाई।

कोतवाल ने सहज ही गङ्गाजली न उठाने का निश्चय कर लिया था। बोला—'मेरा आपको विश्वास नहीं है ? मान लीजिये आप अपने पूर्व निर्धार पर अमल करे, तो दोनो ओर से गोली चलेगी, लोहे से लोहा भिड़ेगा और खून बह उठेगा। यदि आप मेरी सम्मति के अनुसार काम करे और यहां से कूच करते ही लड़ाई हो पड़े तो भी फल एकसा ही होगा।'

मुसाहिबजू ने मुस्कराकर कहा—'तब आपकी बात में चाल है और दगा है। भरतगढ़ मे बैठकर कुछ देर रक्षा तो अपनी कर लेगे।'

कोतवाल तुरन्त बोला—'तोप का मुकाबिला भी भरतगढ़ कर लेगा ?'

इतने मे गङ्गाजली आगई।

कोतवाल ने कहा—'मै गङ्गाजली की सौगन्ध खाकर भी कहूंगा। आप मेरा विश्वास करे। आप सब कमठाने को लेकर केरुआ चले जायं।'

कोतवाल ने गङ्गाजली हाथ में लेकर मुसाहिबजू को बेखटके मार्ग मिलने के सम्बन्ध मे सौगन्ध खाई।

मुसाहिबजू ने मान लिया। कोतवाल ने बड़ी अनुनय के साथ कहा—'आप मुझको अपना मित्र कहने की कृपा करते हैं और आज तक मैने आपसे कोई याचना नही की। आज एक चीज़ मांगता हूँ। क्या आप देगे ?'

मुसाहिबजू का गला भर आया। बोले— मांगो, दूँगा।'

कोतवाल ने तुरन्त प्रार्थना की—'स्मारक के तौर पर अपनी दुनाली बन्दूक़ दे दीजिये।'

मुसाहिबजू ने बन्दूक दे दी। कोतवाल बन्दूक़ लेकर चला गया।

— २० —

उस दिन जो कुछ हुआ, उसको लेकर दतिया नगर भर में कोलाहल मच गया। पहले तो यह समाचार ज़ोर के साथ फैला कि राजा की आज्ञा की अवज्ञा करने के कारण भरतगढ़ पर गोला चलने वाला है और जवाब मे भी ऐसी गोलाबारी होगी कि दतिया का एक घर भी समूचा न बचेगा। लोगों ने भागने की तैयारी की। कुछ तो आस-पास के ग्रामों मे भाग भी गये। लुटे हुये साहूकारों के साथ बहुत थोड़े लोगों की सहानुभूति रह गई। अधिकांश लोग कह रहे थे—'कितना धन लुटा होगा, लूटमार तो होती ही रहती है, पर इस तरह घड़ी-भर मे हरा-भरा नगर नहीं उजाड़ा जाता।'

कोतवाल दुनाली बन्दूक़ लेकर सीधा राजा के पास पहुंचा। इधर मुसाहिबजू ने तुरन्त केरुआ के लिये कूच करने की योजना बनाली। लड़ाई-भिड़ाई के उपरान्त बचे-खुचे अनाहत लोग यों भी कहीं बाहर शरण लेते—मुसाहिबजू ने भी समग्र सामान समेत केरुआ जाने की तैयारी कर रखी थी। अब बिना युद्ध और खून-खराबी के प्रयाण हो सकेगा, इसलिये सन्ध्या होने के पूर्व ही काफी मार्ग तै कर लेने की सबके मनमे समाई हुई थी। चरखारीवाली सरकार की पीनस तैयार हुई। उनकी निजी सेविकाये रथों मे बैठ गईं। घुड़सवार घोड़ों पर और प्यादे पैदल भरतगढ़ छोड़कर चल पड़े। मार्ग क़िले के नीचे-नीचे होकर था।

राजा ऊँची बुर्ज पर एक छाया मे मसनद पर बैठे हुये थे। राजा ने कोतवाल को वहीं बुला लिया। कोतवाल ने राजा के पैरों के पास बन्दूक़ रखकर निवेदन किया—'आज्ञा का पालन हो गया, महाराज!'

राजा ने प्रसन्न होकर पूछा—'किस तरह ?'

कोतवाल ने उत्तर दिया—'अन्नदाता ! मुसाहिबजू सरदार हैं और सेवकवत्सल। उनके सिहतरों ने वारदात जरूर की, परन्तु माल उनके पास नही रहा। मुसाहिबजू के पासे भी वह माल नही आया। परन्तु अपने सिपाहियो का अपराध स्वीकार न करके उन्होने मर-मिटने की ठान ली और वह अपने सैनिको सहित बन्दूके भरकर लड़ने के लिये डट गये। मै अकेला उनके पास गया। उनको समझाया-बुझाया, तो मान गये। मैने उनको हुजूर की आज्ञा देश-निकाले के विषय मे सुनादी, क्योंकि पकड़-धकड़ मे अपने ही सिपाहियो की प्राण-हानि थी। अन्नदाता की आज्ञा-पालन के प्रमाण मे मुसाहिबजू ने अपनी बन्दूक कदमो मे भेजी है, सो मै पेश करता हू।'

राजा को प्रसन्नता कम नही हुई। बोले—'मेरी भी इच्छा थी कि खून-खराबी न हो। मुसाहिबजू वैसे अच्छे सिपाही है और स्वामिधर्मी है, परन्तु उनके सिपाहियो ने अच्छा नही किया, इसलिये दण्ड देना पड़ा। तुमने बहुत चतुरता के साथ काम किया। मै खुश हू।'

कोतवाल ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'अन्नदाता, यह बन्दूक मालखाने मे जमा करदी जावे ?'

राजा ने हँसकर कहा—'नही। तुमको इनाम मे देता हूं। अपने पास रखो।'

कोतवाल ने राजा के पैर छुये, और अपने पास बन्दूक रखकर बैठ गया। राजा का खवास, जो जाति का ढीमर था, पान ले आया। राजा पान खाकर तकिया से टिक गये। देर तक टिके रहे। सन्ध्या होने मे अभी विलम्ब था।

एक ओर से कुछ हल्ला-गुल्ला सुनाई पड़ा, धूल भी उड़ रही थी। राजा का ध्यान आकृष्ट हुआ। कोतवाल से पूछा, 'यह क्या है ?'

कोतवाल ने उत्तर दिया—'अन्नदाता, मुसाहिबजू अपने आदमियों के साथ प्रस्थान कर रहे हैं। केरुआ के लिये मार्ग यही होकर है।'

राजा चुपचाप देखते रहे। थोड़ी देर में आगे-आगे घोड़े पर सवार मुसाहिबजू, उनके पीछे पीनस में चरखारी वाली सरकार और आसपास थोड़े से घुड़सवार, इनके पीछे परिचारिकाओं के रथ और सामान की बैलगाड़ियाँ तथा पैदल बन्दूक वाले। जब ये लोग किले के नीचे आगये, मुसाहिबजू ने ऊँची बुर्ज की ओर देखा। उन्होंने कल्पना करली कि राजा बैठे हैं। घोड़े पर से उतर पड़े। राजा को बहुत झुककर मुजरा किया। उनके सब संगी थम गये, और उन्होंने भी प्रणाम किया। फिर मुसाहिबजू फुर्ती के साथ घोड़े पर सवार होकर बढ़ दिये। राजा ने यह सब भलीभाति देख लिया। राजा के नेत्र सजल हो गये और गला भर आया। कोतवाल से बोले—'देश-निकाले का दण्ड तो पूरा हो ही गया है?'

कोतवाल समझ गया कि राजा पसीज गये। उसने विनती की—'अन्नदाता, ऐसे सरदार के लिये यह बहुत काफी है।'

राजा—'इस सरदार ने मेरे लिये अनेक बार अपनी जान जोखिम में डाली। इसका आज यह हाल देखकर दया आती है।'

कोतवाल—'ठीक मर्ज़ी हुई। रण में ऐसा अड़ने वाला ठाकुर कठिनाई से मिलेगा।'

राजा—'कोतवाल, दण्ड तो मिल चुका, अब आगे बात नहीं बढ़ाना चाहता हूं।'

कोतवाल—'हुकुम हो। अन्नदाता, इसी क्षण पालन किया जावेगा।'

राजा ने आज्ञा दी—'तुम मुसाहिबजू से कह दो कि दण्ड की मर्यादा पूरी हो गई। भरतगढ़ लौट जाओ, तुरन्त जाओ।'

कोतवाल दौड़ता हुआ किले के बाहर हुआ। मुसाहिबजू के पास हाँफता हाँफता पहुँचा। वे सब ठहर गये। मुसाहिबजू ने अधीरता के साथ पूछा—'क्या है कोतवाल साहब? गड्डाजली की याद है?'

कोतवाल ने दम लेकर उत्तर दिया—'तभी तो सेवा में मैं हाजिर हुआ हूं। आप भरतगढ़ लौट जावें। महाराज ने क्षमा प्रदान करदी है।'

'मुझको नहीं चाहिये, मुसाहिबजू ने दृढ़ता के साथ कहा—'अब हम लोगों को बिना खूंटे-खुटके चले जाने दीजिये लौटेंगे नहीं।'

कोतवाल—'आपने महाराज की आज्ञा का कभी निरादर नहीं किया।'

मुसाहिबजू—'यदि महाराज की एक आज्ञा दूसरी के विपरीत हो, तो मुझको जो पसन्द आवेगी, उसको मानूँगा।'

कोतवाल—'ऐसा स्वामी नहीं मिलेगा।'

मुसाहिबजू—'और ऐसे सेवक तो गली-गली मारे-मारे फिरते हैं।'

कोतवाल—'इतना हठ नहीं करना चाहिये।'

मुसाहिबजू—'कह देना कि उनके जान मैं और मेरी सब सेना मर गई।'

— २१ —

राजा को सन्देह था, शायद कोतवाल के कहने से मुसाहिबजू न लौटे, इसलिये उन्होंने रामसिंह को बुला भेजा। नगर-भर में पहले तो यह खबर फैली कि मुसाहिबजू को स्वजनों सहित देश-निकाले की सजा दी गई है, फिर इस समाचार के फैलने में देर न लगी कि राजा उनको लौटाने का प्रयत्न कर रहे है। नगर के कुछ साहूकार शीघ्र इकट्ठे हुये। उनमें कुञ्जी भी था। वे सब नंगे पैर मुसाहिबजू को लौटाने के लिये चल पड़े।

रामसिंह राजा के सामने आया। मुजरा करके हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। राजा ने कहा—कुँवरसाहब, तुम साथ में नहीं गये ?'

रामसिंह को अपने बुलाये जाने का कारण मालूम था। बोला—'अन्नदाता की आज्ञा बिना तो मैं मर भी नहीं सकता।'

राजा ने अनुरोध किया—'तुम किसी तरह मुसाहिबजू को लौटा लाओ। मैंने चरखारी वाली बेटी को साथ में जाने के लिये नहीं कहा था। और, जो-कुछ होना था, हो चुका। मेरी आज्ञा का पालन हो गया। मुसाहिबजू के चले जाने से सारी बस्ती सूनी जान पड़ने लगी है।'

रामसिंह ने जरा छहराने के लिये कहा—'महाराज, वह थोड़े दिन के लिये केरुआ जा रहे हैं, इसीलिये मैं साथ में नहीं गया। केरुआ से जब बुलाये जावेंगे, आ जावेंगे।'

राजा गम्भीर होकर बोले—'इस बीच में यदि ग्वालियर वालों से ठन गई तो ?'

रामसिंह ने उत्तर दिया—'महाराज, केरुआ बहुत दूर नहीं है।'

राजा ने जरा कुपित स्वर मे कहा—'बाते बना रहे हो, समय निकला जा रहा है, तुम्हारे बसका है या स्वयं कुछ उपाय करूँ ?'

राजा की उतावली की सीमा का उल्लङ्घन न करने के निर्णय से प्रेरित होकर रामसिंह बोला—'अन्नदाता, मैं अभी प्रयत्न करता हूँ।'

'प्रयत्न ही नही', राजा ने आग्रह के साथ कहा—'जैसे बने, तैसे लौटाओ। तेज घोड़े पर बैठकर जाओ। वे दूर निकल गये होंगे।'

'मै अभी जाता हूँ।' रामसिंह बोला—'नगर के साहूकार भी मनाने गये है। मुसाहिबजू को मेरे पहुँचने तक वे लोग अवश्य थाम लेगे।'

राजा ने जरा चैन की साँस लेकर कहा—अच्छा हुआ वे लोग भी गये, अन्यथा मै उनको किसी समय देखता, क्योंकि उनकी फ़रियाद पूरी-की-पूरी सच्ची न थी।'

रामसिंह क़िले से बाहर आया। अस्तबल से घोड़ा चुनने-निकालने मे उसको कुछ विलम्ब हुआ।

मुसाहिबजू अपने समाज सहित बहुत धीरे-धीरे जा रहे थे, इसलिये साहूकार समुदाय की पुकार 'ठहरियेगा, ठहरियेगा' उन्होंने सुन ली और वे थम गये। सबसे पहले कुञ्जी को लल्ली मिला। किसी पूर्व निश्चय के अनुसार कुञ्जा ने लल्ली से ऊँचे स्वर मे कहा—'माते, अपने गहने लिये जाओ, वे मेरे नही है।'

मुसाहिबजू जरा रूखे स्वर मे बोले—'वे गहने लल्ली के नही है, तुम्हारे है। राजा निर्णय कर चुके है।'

लल्ली ने भी हा-मे-हा मिलाई—'मेरे नही है, मठ!' और उसने लम्बी साँस ली।

एक साहूकार बोला—'कुछ भी हो। आप बिना यह नगर साधनहीन हो जावेगा। राजा वापस बुला रहे है। हम लोगो की भी प्रार्थना है। थोडे-से नेवरो की कोई बात नही। बहुत कमा-खा लेंगे। हम लोगो के यहाँ कौन सोने-चाँदी की खेती होती है, इन्ही लोगो से तो चील-झपट्टा करते है।'

इस प्रार्थना मे व्यङ्ग, आरोप और सत्य का सम्मिश्रण मुसाहिबजू के कोप का कारण हुआ, परन्तु अपने पीछे चरखारी-वाली सरकार की पीनस पर दृष्टिपात करते ही उनको कुछ लज्जा मालूम हुई। उन्होंने कोप को निरुद्ध करके कहा, 'इस तरह राजा भी बात नही करते, जिस तरह आप लोग कह लेते हो। कुञ्जी के समाधान करने पर भी आप लोग साफ बात नही कहते।'

उक्त साहूकार बोला—'राजा, यदि आप नहीं लौटेंगे, तो हम लोग व्यर्थ ही किसी आपत्ति मे खप जावेंगे। हम लोग भी राज्य को छोड़ देंगे।'

'कहां जाओगे ?' मुसाहिबजू ने पूछा।

एक दूसरे साहूकार ने उत्तर दिया—'जहां हम लोगों की रक्षा की पूरी व्यवस्था होगी।'

मुसाहिबजू ने क़िले की ओर दृष्टिपात करके दूसरा प्रश्न किया—'यह व्यवस्था कहाँ है ?'

उक्त साहूकार ने समझा मुसाहिबजू जरा ढीले पड़ रहे हैं, उत्तर दिया—'ग्वालियर मे, अङ्गरेजो के राज्य मे।'

लक्ष्मी बीच मे बोल पड़ा—'हाँ, जहां आराम के साथ एक के निन्नानवे बना सको।'

एक तीसरे साहूकार ने जरा धीरे से कहा—'जहां लक्ष्मी मातें न हों।'

इस व्यङ्ग को मुसाहिबजू ने नहीं सुना—चरखारी वाली सरकार ने सुन लिया। वह जोर से खाँसी। मुसाहिबजू ने उस

खाँसी के संकेत को अवगत कर लिया। बोले—रास्ता छोड़ो। सन्ध्या हो रही है, दूर जाना है।'

बनियो ने फिर आग्रह किया, परन्तु उनके आग्रह मे आत्म-रक्षा का आभास अधिक था और सहानुभूति का कम। एक और सेठ ने अपने कन्धे से कन्धा भिलाये हुये दूसरे सेठ से धीरे से कहा—'घर चलो और शीघ्र दतिया छोड़ने की तैयारी करो, नहीं तो राजा हम सबको खा जायँगे और ये केरुआ से बैठे-बैठे ही हमको लूटते रहेंगे।'

जो साहूकार मुसाहिबजू के घोडे के पास खड़ा था उसने विनय की—'राजा, हम लोगो का धर्म था कि आप से लौट चलने के लिये प्रार्थना करते सो निभा लिया। अब हम लोग भी दतिया छोड़ देंगे।'

मुसाहिबजू ने पीछे मुड़कर देखा, कोई तेजी के साथ घोड़ा दौड़ाए आ रहा है। चिल्लाकर बोले—'रमू देखो, यह कौन है।'

रमू ने अपनो बन्दूक संभाली; परन्तु कन्धे से जोड़ी नहीं। बोला—'अन्नदाता, एक ही सवार है।'

मुसाहिबजू ने अपने सब संगियो को सुनाने के लिये जोर के साथ कहा—'इसकी और सुनलो। देखे, क्या कहता है। फिर सपाटे के साथ चल दो।'

सबलोग इसी घुड़सवार की ओर देखने लगे। थोड़े समय मे रामसिंह आ पहुंचा। घोड़े से उतरकर उसने मुसाहिबजू के पैर छुये। बोला—'लौट चलिये।'

एक साहूकार ने कहा—'हमलोग भी बड़ी देर से बिनती कर रहे है।'

मुसाहिबजू—'क्यो लौटूँ, कुँवर साहब ?'

रामसिंह—'राजा की आज्ञा है।'

एक साहूकार—'और हम लोगो की प्रार्थना।'

मुसाहिबजू—'न तो राजा का मन हमारी तरफ से साफ़ हुआ है और न ये साहूकार वास्तव मे चाहते हैं कि हम अपने दल सहित दतिया मे रहे। इसलिये कुँवर साहब, अब हमारी यात्रा के लिये कुसमय न करो।'

साहूकार—'हम, राजा, बेमौत मरे। लुटे और कुटे।'

मुसाहिबजू—'देखो, इनलोगो ने अब तक वह टेक नही छोड़ी।'

साहूकार—'बड़ी देर से तो मना रहे है, कहें तो कलेजा चीर कर दिखलादे कि जो मन मे है, वही बाहर है।'

मुसाहिबजू—'अपने घर लौट जाओ। किसी का कुछ खो जावेगा, तो लगाओगे मुसाहिबजू के आदमियो को।'

साहूकार क्षुब्ध होगये। यहा तक आये ही क्यों, यह सोच कर मन मे पछताये। परन्तु युग और परिस्थति ने उनको खुशामद मे ढाल दिया था, इसलिये उनके अगुये ने कहा—'हम लोग तो बिना जीभ के पशु हैं। श्रीमान की छाया मे बसते हैं। आप रूठ जावेंगे, तो भगवान भी रूठ जावेंगे। मन्दिरो मे उधर ठाकुरजी हैं और इधर बाहर आप ठाकुरजी है।'

किन्तु कोई भी युग और परिस्थिति मानव-हृदय के अन्तस्तल की ज्वाला की प्रत्येक लौ को पूर्णतया विवश नहीं कर सकती, एक और साहूकार के मुँह से परवश और अकस्मात निकल गया—मान जाइये, हम लोग तो उनकी भी भोग-ब्यारी हैं और आप की भी।'

इस वाक्य ने मुसाहिबजू के कलेजे मे आगसी धधका दी। बोले—'रास्ता-छोड़ो। जायँगे। नहीं तो घोड़े से कुचल जाओगे। अन्य साहूकारों ने उक्त साहूकार की भर्त्सना की। रामसिंह ने मुसाहिबजू के घोड़े की लगाम दूसरे हाथ से पकड़ ली।

मुसाहिबजू ने क्रुद्ध स्वर मे कहा-'हटो, नहीं तो पछताओगे।'

रामसिह—'पछताना तो हम दोनों को ही पड़ेगा। जानते हैं आप, क्या समस्या सामने है ?'

मुसाहिबजू उतावले होकर बोले—'समस्या हमारा क्या करेगी ? कौनसी समस्या है ?'

रामसिह—'सिंधिया की सेना रोनीजा की गढ़ी तक आगई है। अभी-अभी समाचार मिला है।'

मुसाहिबजू—'तो क्या करूँ ?'

रामसिह ने लगाम छोड़ कर कहा—'भाग जाओ, जिसमे संसार भर मे नाम हो।'

'क्या ?'—मुसाहिबजू चकित होकर बोले।

रामसिह ने तुरन्त कहा—'दुनिया-भर कहेगी कि ....'

'क्या ?'—मुसाहिबजू ने टोका।

रामसिंह कहता गया—'और राजा कहेंगे। दतिया के वन-पर्वत चिल्लाकर कहेंगे।'

'क्या कहेंगे ?'—मुसाहिबजू ने व्यग्र स्वर में प्रश्न किया।

रामसिह ने बेधड़क उत्तर दिया—'यह कहेंगे कि आपके सिपाही डाका डालने में प्रवीण और आप डरपोकों में सबसे आगे.....।'

मुसाहिबजू को पसीना आ गया। रुँधे कण्ठ से बोले—'क्या कहा कुँवर साहब ?'

'मैंने ठीक कहा'—रामसिह ने कहा—'संसार-भर कहेगा कि आपने ठीक समय पीठ दिखाई और आप कायर हैं।'

मुसाहिबजू बोले—'न मैं कायर हूँ और न मेरे सिपाही डाकू।'

रामसिह—'तब तुरन्त लौट चलिये और सिन्धिया की सेना का मुक़ाबिला करने की तैयारी करिये।'

मुसाहिबजू—'चलो, कुँवर साहब! युद्ध मे प्राण देना केरुआ जाने की अपेक्षा कही अधिक अच्छा है।'

इसके बाद मुसाहिबजू अपने दल सहित लौट पड़े, परन्तु भरतगढ़ न गये। आदे के बाग मे, जो दतिया नगर से बाहर है, जा ठहरे। उन्होंने अपना प्रण घोषित किया—'दतिया के ऊपर चढ़ आने वाले शत्रु को परास्त करके यदि जीवित रहे, तो केरुआ चले जावेंगे, परन्तु परित्यक्त भरतगढ मे पैर न रक्खेंगे।'

— २२ —

रामसिंह ने राजा को सब बात कह सुनाई और प्रण से मुसाहिबजू को डिगाने मे अपनी असमर्थता प्रकट की। राजा दीवान को लेकर आदे के बाग मे बिना विलम्ब पहुँचे। राजा के आने का समाचार सुनकर मुसाहिबजू तुरन्त अगवानी के लिये बढ़ आये। हाथ जोड़कर नीचा सिर किये राजा के सामने खड़े हो गये। राजा ने बिना आसन लिये ही स्नेह के स्वर मे कहा—'मुसाहिबजू, मै तुम्हारा राजा हू न ?'

मुसाहिबजू—'राजा, अन्नदाता और स्वामी !'

राजा—'मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन तो न करोगे ?'

मुसाहिबजू—'कभी नही।'

राजा—'भरतगढ़ जाओ और यथावत अपना काम करो। जब दतिया पर कोई धावा बोले, तब डटकर उसका मुक़ाबिला करो।'

मुसाहिबजू का गला भर आया। चुप रहे।

राजा ने कहा—'क्या मै हाथ पकड़ कर भरतगढ़ ले चलूँ ?'

मुसाहिबजू ने गद्‌गद् स्वर मे उत्तर दिया—'जहां महाराज की आज्ञा होगी, वही जाऊँगा। हुकुम हो, तो रात-भर यही ठहरा रहू। आज गरमी भी बहुत है।'

'नही', राजा ने दृढ़तापूर्वक कहा—'भरतगढ़ लौट जाओ। गरमी-सरदी सब भरतगढ़ मे ही बिताओ।'

मुसाहिबजू स्वीकार करते हुये बोले—'स्वामी के हठ के सामने सेवक का हठ नही चल सकता। अभी जाता हूँ।'

राजा ने अकेले मे लेजाकर मुसाहिबजू से कहा—'देखो, ज़माना नाज़ुक है। संभलकर चलो और सिपाहियो की बागडोर हाथ मे रक्खो।'

मुसाहिबजू ने विनय की—'अन्नदाता, ऐसा ही होगा। मुझको कोई भी कायर न कह सकेगा।'

राजा—'तुम कायर नहीं हो।'

मुसाहिबजू—'थोड़ी देर पहिले रामसिंह बहुत बड़ी बात कह गये।'

राजा—'रामसिंह की परवाह मत करो। वह अपना ही है, परन्तु प्रजा की, बनियों की, रक्षा अवश्य करनी होगी।'

मुसाहिबजू—'महाराज, मैं वह सब माल लौटवा दूँगा।'

राजा को हँसी आ गई। बोले—'मुसाहिबजू जो-कुछ उचित हो, करो। मुझको उस विषय में कुछ नहीं कहना है। केवल एक बात याद रखो,

'जासु राज्य प्रिय प्रजा दुखारी,
सो नृप अवस नरक अधिकारी।'

❀ इति ❀